11115CH05

अध्याय 5

संवेदी, अवधानिक एवं प्रात्यक्षिक प्रक्रियाएँ

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- संवेदी प्रक्रियाओं के स्वरूप को समझ सकेंगे,
- अवधान की प्रक्रियाओं एवं प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे,
- आकार एवं स्थान प्रत्यक्षण की समस्याओं का विश्लेषण कर सकेंगे,
- प्रत्यक्षण में सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों की भूमिका की परीक्षा कर सकेंगे, तथा
- दैनंदिन जीवन में संवेदी, अवधानिक एवं प्रात्यक्षिक प्रक्रियाओं पर विचार कर सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय
जगत का ज्ञान
उद्दीपक का स्वरूप एवं विविधता
संवेदन प्रकारताएँ
चाक्षुष संवेदना
अन्य मानवीय संवेदनाएँ (बॉक्स 5.1)
श्रवण संवेदना
अवधानिक प्रक्रियाएँ
चयनात्मक अवधान
विभक्त अवधान (बॉक्स 5.2)
संधृत अवधान
अवधान विस्तृति (बॉक्स 5.3)
अवधान न्यूनता अतिक्रिया विकार (बॉक्स 5.4)
प्रात्यक्षिक प्रक्रियाएँ
प्रत्यक्षण के प्रक्रमण उपागम
प्रत्यक्षणकर्ता
प्रात्यक्षिक संगठन के सिद्धांत
स्थान, गहनता तथा दूरी प्रत्यक्षण
एकनेत्री संकेत एवं द्विनेत्री संकेत
प्रात्यक्षिक स्थैर्य
भ्रम
प्रत्यक्षण पर सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव

प्रमुख पद
सारांश
समीक्षात्मक प्रश्न
परियोजना विचार

© NCERT not to be republished

परिचय

पिछले अध्यायों में आप पढ़ चुके हैं कि हम किस प्रकार अपने ग्राहियों की सहायता से बाह्य तथा आंतरिक परिवेश में उपस्थित विविध उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया करते हैं। यद्यपि उनमें से कुछ ग्राहियों का स्पष्ट रूप से प्रेक्षण किया जा सकता है (उदाहरण के लिए, आँख अथवा कान), शेष हमारे शरीर के अंदर पाए जाते हैं जिनका प्रेक्षण बिना विद्युत अथवा यांत्रिक साधनों के नहीं किया जा सकता है। इस अध्याय में आपका परिचय विभिन्न ग्राहियों से होगा जो बाह्य एवं आंतरिक जगत से अनेक प्रकार की सूचनाओं का संग्रह करते हैं। दृष्टि एवं श्रवण से संबद्ध कुछ रुचिकर प्रक्रियाओं के साथ-साथ आँख एवं कान की संरचना एवं उनके प्रकार्यों पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित होगा। आप अवधान से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को भी जानेंगे, जो ज्ञानेंद्रियों द्वारा संगृहीत सूचनाओं को ग्रहण एवं पंजीकृत करने में हमारी सहायता करते हैं। विभिन्न प्रकार के अवधानों का वर्णन उनको प्रभावित करने वाले कारकों के साथ किया जाएगा। अंत में हम प्रत्यक्षण की प्रक्रिया की विवेचना करेंगे जो जगत को एक सार्थक ढंग से समझने में हमारी सहायता करती है। आपको यह जानने का भी अवसर प्राप्त होगा कि हम किस प्रकार कुछ उद्दीपकों; जैसे- आकृतियों एवं चित्रों से कभी-कभी धोखा खा जाते हैं।

जगत का ज्ञान

हम जिस जगत में रहते हैं वह वस्तुओं, लोगों एवं घटनाओं की विविधता से पूर्ण है। आप जिस कक्ष में बैठे हैं उसको देखिए। आपको आस-पास बहुत सी चीज़ें दिखाई देंगी। उदाहरण के लिए, आप अपनी मेज़, अपनी कुर्सी, अपनी पुस्तकें, अपना बैग, अपनी घड़ी, दीवार पर टंगे चित्र तथा अन्य बहुत सी चीज़ें देख सकते हैं। जिनकी आकृति, आकार तथा रंग भी अलग-अलग होंगे। यदि आप अपने घर के दूसरे कक्ष में जाएँ तो आप बहुत सी अन्य नयी चीज़ें देखेंगे (जैसे- बर्तन एवं कड़ाही, अलमारी, टेलीविज़न)। यदि आप अपने घर से बाहर जाएँ तो आपको और बहुत सी चीज़ें मिलेंगी जिनके विषय में आप जानते हैं (जैसे- पेड़, जानवर, भवन आदि)। हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन में ऐसे अनुभव बहुत सामान्य हैं। हमें इनको जानने के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता है।

यदि आपसे कोई पूछता है, 'आप कैसे कह सकते हैं कि ये विविध प्रकार की चीज़ें आपके कक्ष या घर या बाह्य परिवेश में हैं?' तो संभवतः आपका यही उत्तर होगा कि आप उन्हें अपने आस-पास देखते अथवा अनुभव करते हैं। ऐसा करने में आप प्रश्नकर्ता को बताना चाहते हैं कि विविध वस्तुओं का ज्ञान हमारी ज्ञानेंद्रियों (जैसे- आँख, कान) की सहायता से हो पाता है। ये ज्ञानेंद्रियाँ मात्र बाह्य जगत से ही नहीं बल्कि हमारे अपने शरीर से भी सूचनाएँ संग्रह करती हैं। हमारी ज्ञानेंद्रियों द्वारा संगृहीत सूचनाएँ ही हमारे समस्त ज्ञान का आधार बनती हैं। ज्ञानेंद्रियाँ वस्तुओं के विषय में विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को पंजीकृत करती हैं, परंतु पंजीकृत होने के लिए वस्तुओं तथा उनके गुणों (जैसे- आकार, आकृति एवं रंग) को हमारा ध्यान आकर्षित करने की क्षमता होनी चाहिए। पंजीकृत सूचनाओं को मस्तिष्क को भी भेजा जाना चाहिए जो उन्हें अर्थवान बनाता है। इसलिए, हमारे आस-पास के जगत का ज्ञान तीन प्रमुख प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है - संवेदना, अवधान, तथा प्रत्यक्षण। ये प्रक्रियाएँ एक दूसरे से अत्यधिक अंतर्संबंधित होती हैं, इसलिए इन्हें अधिकांशतः एक ही प्रक्रिया - संज्ञान के विभिन्न अंशों के रूप में समझा जाता है।

उद्दीपक का स्वरूप एवं विविधता

हमारे आस-पास के बाह्य परिवेश में विविध प्रकार के उद्दीपक पाए जाते हैं। उनमें से कुछ (जैसे- घर) देखे जा सकते हैं जबकि कुछ (जैसे- संगीत) मात्र सुने जा सकते हैं। बहुत से अन्य उद्दीपक भी होते हैं जिन्हें हम सूँघ सकते हैं (जैसे- फूल की सुगंध) अथवा उनका स्वाद ग्रहण कर सकते हैं (जैसे- मिठाई)। कई अन्य भी होते हैं जिनका हम स्पर्श कर अनुभव कर सकते हैं (जैसे- कपड़े का चिकनापन)। ये सभी उद्दीपक हमें अनेक प्रकार की सूचनाएँ देते हैं। इन विविध उद्दीपकों से व्यवहार करने के लिए हमारे पास विशिष्ट ज्ञानेंद्रियाँ होती हैं।

© NCERT not to be republished

मानव के रूप में हमारी सात ज्ञानेंद्रियाँ हैं। इन ज्ञानेंद्रियों को संवेदन ग्राही अथवा सूचना संग्राही तंत्र भी कहते हैं, क्योंकि ये विविध स्रोतों से सूचनाएँ प्राप्त अथवा संगृहीत करते हैं। पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, जो बाह्य जगत से सूचनाएँ एकत्रित करती हैं वे हैं – आँख, कान, नाक, जिह्वा एवं त्वचा। जहाँ हमारी आँखें मुख्यतया दृष्टि के लिए उत्तरदायी होती हैं, वहीं कान श्रवण, नाक घ्राण, जिह्वा स्वाद तथा त्वचा स्पर्श, गर्मी, ठंडक और पीड़ा के अनुभव के लिए उत्तरदायी होती है। गर्मी, ठंडक तथा पीड़ा के विशिष्ट ग्राही हमारी त्वचा के अंदर पाए जाते हैं। इन पाँच बाह्य ज्ञानेंद्रियों के अतिरिक्त हमारे पास दो गहन इंद्रियाँ भी होती हैं – गतिसंवेदी एवं प्रघाण तंत्र। ये हमारे शरीर की स्थिति तथा एक दूसरे से संबंधित शरीर के अंगों की गति के विषय में सूचनाएँ देती हैं। इन सात ज्ञानेंद्रियों की सहायता से हम विभिन्न प्रकार के दस उद्दीपकों को उनकी विशेषताओं के साथ पंजीकृत करते हैं। उदाहरण के लिए, आप ध्यान दे सकते हैं कि प्रकाश द्युतिमान है या धुँधला है, पीला है, लाल है अथवा हरा। ध्वनि के विषय में आप जान सकते हैं कि वह उच्च है अथवा अस्पष्ट, श्रुतिमधुर है अथवा ध्यान भंग करने वाली। उद्दीपकों की ये विभिन्न विशेषताएँ भी हमारी ज्ञानेंद्रियों द्वारा पंजीकृत की जाती हैं।

संवेदन प्रकारताएँ

हमारी ज्ञानेंद्रियाँ हमें अपने बाह्य अथवा आंतरिक जगत के संबंध में मूल सूचना प्रदान करती हैं। किसी विशेष ज्ञानेंद्रिय द्वारा पंजीकृत किसी उद्दीपक या वस्तु का प्रारंभिक अनुभव संवेदना कहलाता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम अनेक भौतिक उद्दीपकों का पता लगाते हैं तथा उनका संकेतन करते हैं। संवेदना का संबंध उद्दीपक के गुणों; जैसे- कठोर, गरम, तीव्र तथा नीला के तात्कालिक मूल अनुभवों से होता है, जो एक ज्ञानेंद्रिय के समुचित उद्दीपन के परिणामस्वरूप प्राप्त होता है। अलग-अलग ज्ञानेंद्रियाँ विविध प्रकार के उद्दीपकों से संबंधित होती हैं तथा विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति करती हैं। प्रत्येक ज्ञानेंद्रिय एक विशेष प्रकार की सूचना से संबंध स्थापित करने के लिए अति विशिष्ट होती है। अतः इनमें से प्रत्येक को एक संवेदन प्रकारता के रूप में जाना जाता है।

ज्ञानेंद्रियों की प्रकार्यात्मक सीमाएँ

इससे पहले कि हम ज्ञानेंद्रियों का वर्णन करें, यह जान लेना आवश्यक है कि हमारी ज्ञानेंद्रियाँ कुछ सीमाओं में कार्य करती हैं। उदाहरण के लिए, हमारी आँखें ऐसी चीज़ें नहीं देख सकती हैं जो बहुत धुँधली अथवा बहुत द्युतिमान होती हैं। इसी प्रकार हमारे कान बहुत धीमी अथवा बहुत तीव्र ध्वनि नहीं सुन सकते हैं। यही बात अन्य ज्ञानेंद्रियों के बारे में भी लागू होती है। मानव के रूप में हम उद्दीपन के एक सीमित सीमा-प्रसार में कार्य करते हैं। हमारे संवेदन ग्राही के ध्यान में आने के लिए उद्दीपक में इष्टतम तीव्रता अथवा परिमाण होना चाहिए। उद्दीपक एवं उनकी संवेदनाओं के बीच के संबंधों का अध्ययन जिस विद्याशाखा में किया जाता है उसे **मनोभौतिकी** (psychophysics) कहते हैं।

ध्यान में आने के लिए उद्दीपक का एक न्यूनतम मान अथवा वज़न होना चाहिए। किसी विशेष संवेदी तंत्र को क्रियाशील करने के लिए जो न्यूनतम मूल्य अपेक्षित होता है उसे **निरपेक्ष सीमा** अथवा **निरपेक्ष देहली** (absolute threshold or absolute limen, AL) कहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि आप पानी के एक गिलास में चीनी का एक कण डालें तो हो सकता है कि आपको उस पानी में मिठास का अनुभव न हो। एक कण और मिलाने से भी हो सकता है कि स्वाद मीठा न हो लेकिन यदि आप एक-एक कण डालते जाएँ तो एक बिंदु ऐसा आएगा जब आप कहेंगे कि पानी अब मीठा हो गया है। चीनी के कणों की वह न्यूनतम संख्या जिससे हम पानी में मिठास का अनुभव करते हैं, उसे मिठास की निरपेक्ष सीमा कहते हैं।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि निरपेक्ष सीमा निश्चित बिंदु नहीं होती, बल्कि यह व्यक्तियों की आंगिक दशाओं एवं उनकी अभिप्रेरणात्मक स्थितियों के आधार पर विशेष रूप से सभी व्यक्यिों एवं परिस्थितियों में बदलती रहती है। इसलिए उसका मूल्यांकन हमें कई प्रयासों के आधार पर करना चाहिए। 50 प्रतिशत अवसरों पर चीनी के कणों की जिस संख्या से पानी में मिठास का अनुभव हो सकता है वह मिठास की निरपेक्ष सीमा होगी। यदि आप चीनी के और कणों को मिलाएँ तो इसकी संभावना अधिक है कि पानी प्रायः मीठा ही बताया जाएगा ना कि सादा।

हमारे लिए जैसे सभी उद्दीपकों को जान पाना संभव नहीं होता वैसे ही समस्त प्रकार के उद्दीपकों के मध्य अंतर कर पाना भी संभव नहीं होता है। यह जानने के लिए कि दो उद्दीपक एक दूसरे से भिन्न हैं, उन उद्दीपकों के मान में एक न्यूनतम अंतर होना अनिवार्य है। दो उद्दीपकों के मान में न्यूनतम अंतर, जो उनकी अलग पहचान के लिए आवश्यक होता है, को **भेद सीमा** अथवा **भेद देहली** (difference threshold or difference limen, DL) कहते हैं। इसे

© NCERT not to be republished

समझने के लिए हम अपने 'चीनी-पानी' वाले प्रयोग को दोहरा सकते हैं। जैसे कि हमने देखा, चीनी के कुछ कणों को मिला देने के बाद सादा पानी मीठा लगने लगता है। आइए, इस मिठास को याद करें। अगला प्रश्न है: पानी में चीनी के कितने और कण मिलाने की आवश्यकता होगी, जिससे मिठास के पिछले अनुभव से भिन्न अनुभव प्राप्त हो। चीनी का एक-एक कण पानी में डालें और प्रत्येक बार पानी का स्वाद चखें। कुछ कणों को मिलाने के बाद आप अनुभव करेंगे कि अब पानी की मिठास पूर्व मिठास से अधिक है। पानी में मिलाए गए चीनी के कणों की संख्या जिससे मिठास का अनुभव पूर्व में हुए मिठास के अनुभव की तुलना में 50 प्रतिशत अवसरों पर भिन्न हो तो उसे मिठास की भेद देहली कहेंगे। इस प्रकार, भौतिक उद्दीपक में वह न्यूनतम परिवर्तन जो 50 प्रतिशत प्रयासों में संवेदन भिन्नता कराने में सक्षम है उसे भेद सीमा कहते हैं।

अब तक आप समझ गए होंगे कि विविध प्रकार के उद्दीपकों (उदाहरण के लिए, चाक्षुष, श्रवण) की निरपेक्ष देहली एवं भेद देहली को समझे बिना संवेदना को समझना संभव नहीं है। परंतु संवेदना को समझने के लिए इनको समझना ही पर्याप्त नहीं है। संवेदी प्रक्रियाएँ केवल उद्दीपकों की विशेषताओं पर ही निर्भर नहीं होती हैं, बल्कि इस प्रक्रिया में ज्ञानेंद्रियाँ एवं इन्हें मस्तिष्क के भिन्न-भिन्न केंद्रों से जोड़ने वाले तंत्रिका मार्ग भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। एक ज्ञानेंद्रिय उद्दीपक ग्रहण करती है तथा विद्युत आवेग के रूप में उसका संकेतन करती है। ध्यान में आने के लिए इस विद्युत आवेग का मस्तिष्क के उच्च केंद्रों तक पहुँचना आवश्यक होता है। ग्राही अंग, दूसरे तंत्रिका मार्ग या संबंधित मस्तिष्क क्षेत्र में किसी भी प्रकार का संरचनात्मक या प्रकार्यात्मक दोष या क्षति संवेदना के आंशिक अथवा पूर्ण लोभ का कारण बन सकता है।

चाक्षुष संवेदना

समस्त संवेदन प्रकारताओं में मानव में दृष्टि सर्वाधिक विकसित होती है। विभिन्न आकलनों के अनुसार हम बाह्य जगत से अपने संव्यवहार में लगभग 80 प्रतिशत इसी का उपयोग करते हैं। बाह्य जगत से सूचनाओं के संग्रह में श्रवण तथा अन्य संवेदनाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। हम दृष्टि तथा श्रवण संवेदना की कुछ विस्तार से चर्चा करेंगे। अन्य संवेदनाओं की मुख्य विशेषताएँ बॉक्स 5.1 में दी गई हैं।

जब प्रकाश हमारी आँखों में प्रवेश करता है तथा हमारे चाक्षुष ग्राहियों को उद्दीप्त करता है तो चाक्षुष संवेदना प्रारंभ होती है। हमारी आँखें प्रकाश के उस वर्णक्रम के प्रति संवेदनशील होती हैं जिसके तंरगदैर्ध्य का परास 380 नैनोमीटर से 780 नैनोमीटर तक होता है (एक नैनोमीटर एक मीटर का एक अरबवाँ भाग होता है)। प्रकाश के इस परास के परे किसी भी संवेदना का पंजीकरण नहीं होता है।

मानव आँख

मानव आँख की एक रेखाकृति, चित्र 5.1 में प्रदर्शित की गई है। जैसा कि आप देख सकते हैं कि हमारी आँख तीन परतों से बनी होती है। बाह्य परत पर एक पारदर्शी **श्वेतपटल** या **कॉर्निया** (cornea) तथा एक कठोर **स्कलीरा** (sclera) होता है जो शेष आँख को घेरे रहता है। यह आँख की रक्षा करता है तथा उसका आकार यथावत् बनाए रखता है। मध्य परत को **रंजित पटल** (choroid) कहते हैं जिसमें बहुत सी रक्त नलिकाएँ पाई जाती हैं। आंतरिक परत को **दृष्टिपटल** या **रेटिना** (retina) कहते हैं। इसमें प्रकाशग्राही (दण्ड एवं शंकु) और अंत:संबंधित तंत्रिका कोशिकाओं का एक विस्तृत जाल पाया जाता है।

आँख की तुलना प्राय: एक कैमरे से की जाती है। उदाहरण के लिए, आँख एवं कैमरा दोनों में एक लेन्स पाया जाता है। **लेन्स** (lens) आँख को दो असमान कोष्ठों में विभाजित करता है - **जलीय कोष्ठ** (aqueous chamber) तथा **काचाभ कोष्ठ** (vitreous chamber)। जलीय कोष्ठ कॉर्निया एवं लेन्स के मध्य में स्थित होता है। यह आकार में छोटा होता है तथा इसमें पानी जैसा द्रव्य भरा रहता है जिसे **नेत्रोद** (aqueous humor) कहते हैं। काचाभ कोष्ठ लेन्स एवं रेटिना के बीच में स्थित होता है। इसमें जेली जैसा प्रोटीन भरा रहता है जिसे **काचाभ द्रव** (vitreous humor) कहते हैं। इन तरलों से लेन्स के उचित स्थान एवं उपयुक्त आकार में बने रहने में सहायता मिलती है। ये समंजन के लिए पर्याप्त नम्यता प्रदान करते हैं। समंजन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से भिन्न-भिन्न दूरियों की वस्तुओं को फोकस करने के लिए लेन्स अपने आकार में परिवर्तन करता है। यह प्रक्रिया **पक्ष्माभिकी पेशियाँ** (ciliary muscles), जो लेन्स से जुड़ी होती हैं, द्वारा संचालित होती है। ये पेशियाँ दूर की वस्तुओं को फोकस करने के लिए लेन्स को फैला देती हैं एवं निकट की वस्तुओं को फोकस करने के लिए लेन्स को

2019-20

बॉक्स 5.1 अन्य मानवीय संवेदनाएँ

दृष्टि एवं श्रवण के अतिरिक्त अन्य संवेदनाएँ भी होती हैं जो हमारे प्रत्यक्षण को समृद्ध बनाती हैं। उदाहरण के लिए, संतरा केवल अपने रंग के कारण आकर्षक नहीं लगता, बल्कि इसलिए भी कि उसमें एक विशिष्ट सुगंध एवं स्वाद होता है। यहाँ इन अन्य संवेदनाओं का संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है।

1. ***घ्राण** (Smell) : घ्राण संवेदना के उद्दीपक हवा में विद्यमान विभिन्न पदार्थों के अणु होते हैं। ये नासा मार्ग में प्रवेश करते हैं जहाँ वे नम नासा ऊतकों में घुल जाते हैं। यहाँ से वे घ्राण उपकला की ग्राही कोशिकाओं के संपर्क में आते हैं। मानव में इस तरह के लगभग पाँच करोड़ ग्राही पाए जाते हैं जबकि कुत्तों में इस तरह के लगभग 20 करोड़ ग्राही पाए जाते हैं। फिर भी हमारी घ्राण योग्यता प्रभावशाली है। यह ज्ञात है कि मनुष्य लगभग 10,000 प्रकार की विभिन्न गंधों को पहचान सकता है। अन्य इंद्रियों की भाँति घ्राण भी संवेदी अनुकूलन प्रदर्शित करता है।*
2. ***स्वाद** (Taste) : स्वाद के संवेदी ग्राहक हमारी जीभ के छोटे उभरे हुए भाग में पाए जाते हैं, जिन्हें पैपिला या अंकुरक कहते हैं। प्रत्येक पैपिला में स्वाद-कलिका के गुच्छे होते हैं। मनुष्यों में लगभग 10,000 स्वाद-कलिका होती हैं। यद्यपि लोग भोजन की विविध सुगंधों की पहचान कर सकने का दावा करते हैं, परंतु मात्र चार प्रकार के मूल स्वाद होते हैं - मीठा, खट्टा, कड़वा तथा नमकीन। तब यह कैसे संभव होता है कि हम कई और स्वादों का अनुभव करते हैं? इसका उत्तर यह है कि हम केवल भोजन के स्वाद से ही परिचित नहीं होते हैं, बल्कि उसकी गंध, कण, तापमान, जीभ पर उसके दबाव तथा अन्य बहुत-सी संवेदनाओं से परिचित होते हैं। जब ये कारक नहीं रहते हैं तो हमारे पास केवल चार प्रकार के मूल स्वाद होते हैं। इसके अतिरिक्त, विभिन्न सुगंधों के विविध अनुपातों में संयोजन से एक विभिन्न प्रकार की सुगंध का निर्माण होता है, जो अपने आप में विशिष्ट होती है।*
3. ***स्पर्श एवं अन्य त्वचा संवेदनाएँ** (Touch and other skin senses) : त्वचा एक संवेदी अंग है जिससे स्पर्श (दबाव), गर्मी, सर्दी तथा पीड़ा की संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं। हमारी त्वचा में इनमें से प्रत्येक संवेदनाओं के लिए विशिष्ट ग्राहियाँ होती हैं। स्पर्श के ग्राही हमारी त्वचा पर समान रूप से वितरित नहीं होते हैं। इसलिए, हमारे शरीर के कुछ भाग (जैसे- चेहरा तथा उँगली-त्राण) अन्य भागों (जैसे- पैर) की तुलना में अधिक संवेदनशील होते हैं। पीड़ा की संवेदनाओं का कोई विशिष्ट उद्दीपक नहीं होता है। इसलिए, इसके तंत्रों का निर्धारण बहुत ही कठिन होता है।*
4. ***गति संवेदन तंत्र** (Kinesthetic system) : इसके ग्राही जोड़े, स्नायु तथा मांसपेशियों में पाए जाते हैं। यह तंत्र हमारे शरीर के अंगों की परस्पर स्थिति के विषय में सूचना देता है तथा हमें साधारण (जैसे- अपनी नाक को छूना) तथा जटिल गतिविधियाँ (जैसे- नाचना) करने देता है। इस संदर्भ में हमारी चाक्षुष व्यवस्था अधिक सहायता करती है।*
5. ***प्रघाण तंत्र** (Vestibular system) : यह तंत्र हमारे शरीर की स्थिति, गति एवं त्वरण के बारे में सूचनाएँ देता है। ये कारक हमारे संतुलन-बोध को बनाए रखने के लिए आवश्यक होते हैं। इस इंद्रिय के संवेदी अंग आंतरिक कान में स्थित होते हैं। जहाँ प्रघाण झिल्ली हमारे शरीर की स्थिति के विषय में बताती है, वहीं अर्धवृत्ताकार नलिकाएँ हमारी गति एवं त्वरण के बारे में हमें सूचना देती हैं।*

© NCERT not to be republished

सिकोड़ देती हैं। एक कैमरे की तरह आँख में भी एक यंत्र होता है जिससे इसमें आने वाले प्रकाश की मात्रा नियंत्रित की जाती है। यह कार्य **परितारिका** (iris) करती है। यह एक चक्र जैसी रंगीन झिल्ली होती है जो कॉर्निया और लेन्स के बीच स्थित होती है। यह आँख में प्रवेश करने वाले प्रकाश की मात्रा का नियंत्रण पुतली के फैलाव को नियमित करके करती है। धुँधले प्रकाश में पुतली फैल जाती है तथा चमकीले प्रकाश में सिकुड़ जाती है।

आँख की सबसे अंदर की परत को **दृष्टिपटल** (retina) कहते हैं। यह पाँच प्रकार की प्रकाशसंवेदी कोशिकाओं से बना होता है जिसमें दण्ड एवं शंकु सबसे महत्वपूर्ण होते हैं। **दंड** (rods) शलाका दृष्टि (रात्रि दृष्टि) के ग्राही होते हैं। ये प्रकाश की निम्न तीव्रता पर कार्य करते हैं तथा इनसे वर्णांध (रंगहीन) दृष्टि मिलती है। **शंकु** (cones) प्रकाशानुकूली (दिवा प्रकाश) दृष्टि के ग्राही होते हैं। ये प्रकाश-व्यवस्था के उच्च स्तर पर सक्रिय होते हैं तथा इनसे वर्ण (रंग) दृष्टि प्राप्त होती है। प्रत्येक आँख में लगभग 10 करोड़ दंड तथा लगभग 70 लाख शंकु पाए जाते हैं। शंकु **गर्तिका** (fovea) के आसपास दृष्टिपटल के केंद्रीय क्षेत्र में सर्वाधिक मात्रा में पाए जाते हैं। गर्तिका मटर के दाने के आकार का एक छोटा-सा

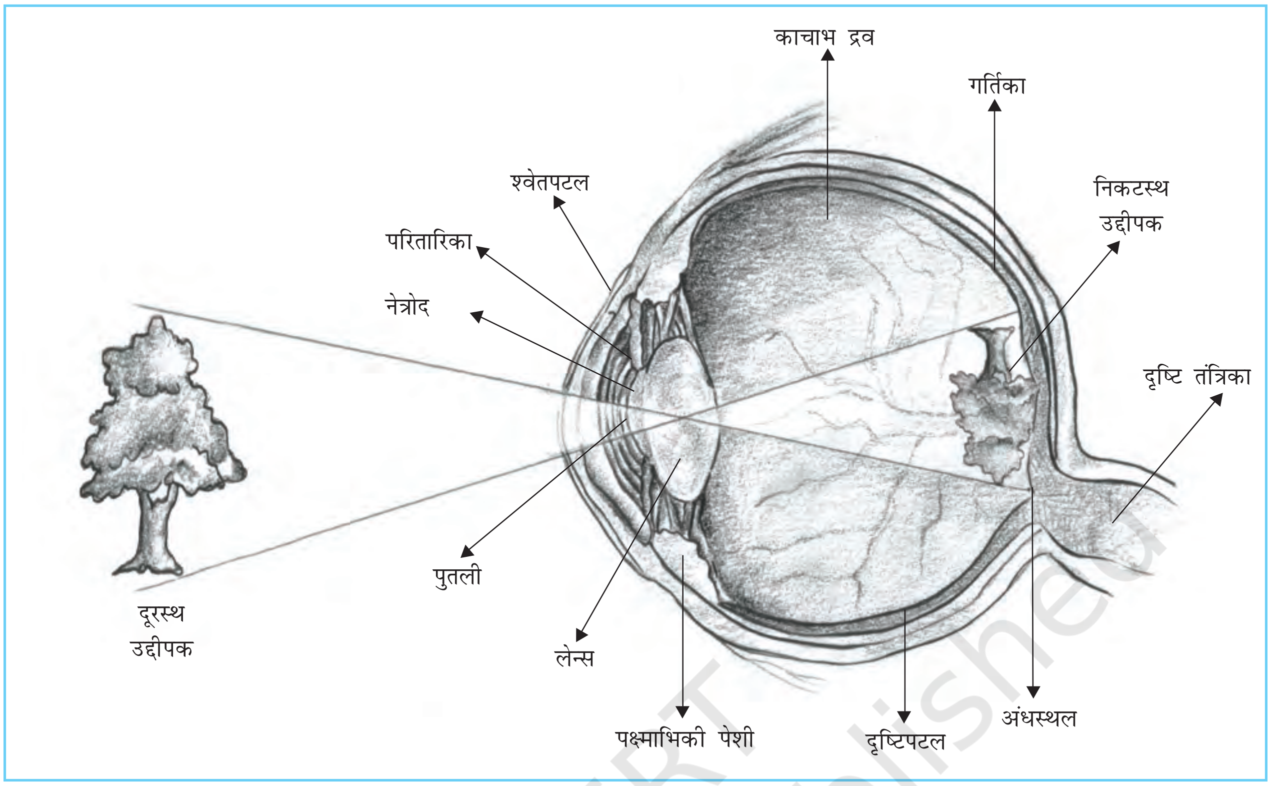

चित्र 5.1 : मानव आँख की संरचना

वृत्ताकार क्षेत्र होता है। इसे **पीत बिंदु** (yellow spot) भी कहते हैं। यह अधिकतम दृष्टि-तीक्ष्णता का क्षेत्र होता है। प्रकाश ग्राहियों के अतिरिक्त रेटिना में कोशिका के बहुत से अक्षतंतु (जिन्हें गुच्छिका कोशिका कहते हैं) पाए जाते हैं, जिनसे **दृष्टि तंत्रिका** (optic nerve) का निर्माण होता है, जो मस्तिष्क तक जाती है।

आँख की क्रियाविधि

नेत्रश्लेष्मला, कॉर्निया तथा पुतली से होकर प्रकाश लेन्स में प्रवेश करता है जो इसे रेटिना पर फोकस करता है। रेटिना दो भागों में विभाजित होता है – नासिकार्ध तथा शंखार्ध। गर्तिका के केंद्र को मध्य बिंदु मान कर आँख के आंतरिक अर्ध भाग (नाक की तरफ) को नासिकार्ध कहा जाता है। गर्तिका के केंद्र से आँख के बाहरी अर्ध भाग (शंख की तरफ) को शंखार्ध कहते हैं। दाहिने चाक्षुष क्षेत्र से प्रकाश प्रत्येक आँख के बाएँ भाग को उद्दीप्त करता है (जैसे- दायीं आँख के नासिकार्ध को और बायीं आँख के शंखार्ध को) तथा बाएँ चाक्षुष क्षेत्र से प्रकाश प्रत्येक आँख के दाएँ अर्ध भाग को उद्दीप्त करता है (जैसे- बायीं आँख के नासिकार्ध को तथा दायीं आँख के शंखार्ध को)। रेटिना पर वस्तु का एक उलटा प्रतिबिंब बनता है। दृष्टि तंत्रिकाओं की सहायता से तंत्रिका आवेग चाक्षुष वल्कुट को भेजा जाता है, जहाँ प्रतिबिंब पुन: उलटा होता है तथा उसका प्रक्रमण किया जाता है। आप चित्र 5.1 में देख सकते हैं कि दृष्टि तंत्रिका दृष्टिपटल को उस क्षेत्र से छोड़ती है जहाँ प्रकाश ग्राही नहीं होते हैं। इस क्षेत्र में चाक्षुष संवेदनशीलता पूर्णत: अनुपस्थित रहती है। इसलिए इसे **अंधस्थल** (blind spot) कहते हैं।

अनुकूलन

मानव आँख प्रकाश तीव्रता के अति विस्तृत परास में कार्य कर सकती है। कभी-कभी हमें प्रकाश स्तरों में द्रुत परिवर्तन को सहन करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, जब हम मैटिनी शो में चलचित्र देखने जाते हैं, तो हॉल में घुसते ही चीज़ों को देख पाना कठिन होता है। फिर, 15-20 मिनट वहाँ बिताने के बाद हम सब कुछ देख सकते हैं। शो देखने के बाद जब हम बाहर आते हैं तो हॉल से बाहर के प्रकाश को हम इतना तीव्र पाते हैं कि कुछ भी दिखाई नहीं देता अथवा कभी-कभी आँख खोले रखने में भी कठिनाई होती है। किंतु लगभग एक मिनट

2019-20

के भीतर हमें ठीक लगने लगता है और हम चीज़ों को ठीक से देख पाने में समर्थ होते हैं। यह समंजन हॉल में घुसने पर किए गए समंजन से तीव्र होता है। प्रकाश की विभिन्न तीव्रताओं के साथ समंजन करने की प्रक्रिया को 'चाक्षुष अनुकूलन' कहते हैं।

प्रकाश अनुकूलन (light adaptation) का संबंध मंद प्रकाश के प्रभावन के बाद तीव्र प्रकाश से समायोजन की प्रक्रिया से है। इस प्रक्रिया में एक से दो मिनट का समय लगता है। दूसरी ओर, **तम-व्यनुकूलन** (dark adaptation) तीव्र प्रकाश के प्रभावन के बाद मंद प्रकाश वाले वातावरण से समायोजन की प्रक्रिया से संबंधित है। इसमें आधा घंटा अथवा प्रकाश के प्रति आँख के प्रभावन के पूर्व स्तर पर निर्भर होने के कारण उससे भी अधिक समय लग सकता है। इन प्रक्रियाओं को सरल बनाने की कुछ विधियाँ हैं। आपको इस प्रक्रिया से अवगत कराने के लिए एक रोचक क्रियाकलाप नीचे दिया गया है।

क्रियाकलाप 5.1

प्रकाशित क्षेत्र से एक अंधेरे कमरे में जाइए और देखिए कि वहाँ की सभी चीज़ों को ठीक से देखने में आपको कितना समय लगता है।

अगली बार जब आप प्रकाशित स्थान में हों तो लाल धूप का चश्मा पहन लीजिए। उसके बाद किसी अंधेरे कमरे में जाइए और देखिए कि चीज़ों को साफ़-साफ़ देखने में आपको कितना समय लगता है।

आप पाएँगे कि लाल धूप के चश्मे के उपयोग से तम-व्यनुकूलन में लगने वाले समय में बहुत अधिक कमी आ गई है।

क्या आप जानते हैं कि ऐसा क्यों घटित हुआ? आप अपने मित्रों एवं शिक्षक से चर्चा कीजिए।

प्रकाश एवं अंधकार अनुकूलन के प्रकाश-रासायनिक आधार : आपको आश्चर्य हो सकता है कि प्रकाश अनुकूलन एवं तम-व्यनुकूलन क्यों घटित होते हैं। प्राचीन मत के अनुसार, प्रकाश अनुकूलन एवं तम-व्यनुकूलन कुछ प्रकाश-रासायनिक प्रक्रियाओं के कारण घटित होते हैं। दंडों में एक प्रकाश-संवेदनशील रासायनिक पदार्थ होता है जिसे *रोडोप्सिन* या चाक्षुष पर्पल कहते हैं। प्रकाश की क्रिया से इस रासायनिक पदार्थ के अणु विरंजित हो जाते हैं अथवा टूट जाते हैं। इन दशाओं में आँख में प्रकाश अनुकूलन की क्रिया घटित होती है। दूसरी ओर, तम-व्यनुकूलन प्रकाश को हटा देने पर होता है। उसमें विटामिन 'ए' की सहायता से दंडों में वर्णक पुनरुत्पादित करने के लिए पुनःस्थापन की प्रक्रिया होती है। यही कारण है कि प्रकाश अनुकूलन की तुलना में तम-व्यनुकूलन की प्रक्रिया धीमी होती है। ऐसा पाया गया है कि जिन लोगों में विटामिन 'ए' की कमी होती है उनमें तम-व्यनुकूलन बिलकुल नहीं हो पाता है और वे अंधकार में चल-फिर नहीं सकते हैं। इस स्थिति को प्रायः निशांधता (रतौंधी) कहते हैं। इसी प्रकार शंकुओं में पाए जाने वाले रासायनिक पदार्थ को *आयोडोप्सिन* कहते हैं।

रंग दृष्टि

पर्यावरण के साथ अंतःक्रिया करते समय हम विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का ही नहीं, बल्कि उनके वर्णों (रंगों) का भी अनुभव करते हैं। ध्यातव्य है कि रंग हमारे संवेदी अनुभवों की एक मनोवैज्ञानिक विशेषता होते हैं। जब हमारा मस्तिष्क बाह्य जगत से प्राप्त सूचनाओं की व्याख्या करता है, तब यह विशेषता उत्पन्न होती है। यह जानना आवश्यक है कि प्रकाश का वर्णन भौतिक रूप में तरंगदैर्ध्य के रूप में किया जाता है, रंग के रूप में नहीं। जैसा कि हमने पहले पढ़ा है, दृश्य स्पेक्ट्रम का ऊर्जा-परास 380-780 नैनोमीटर होता है जिसका हमारे प्रकाशग्राही पता लगा सकते हैं। दृश्य स्पेक्ट्रम से कम या अधिक ऊर्जा आँखों के लिए हानिकारक होती है। सूर्य के प्रकाश में इन्द्रधनुष की तरह सात रंगों का मिश्रण होता है। प्रेक्षित रंग वायलेट, इंडिगो, ब्लू, ग्रीन, येलो, ऑरेंज तथा रेड (संक्षेप में VIBGYOR) होते हैं।

रंगों की विमाएँ

सामान्य वर्ण-दृष्टि का एक व्यक्ति 70 लाख से अधिक विभिन्न रंगों की छटाओं में अंतर कर सकता है। हमारे रंगों के अनुभव का वर्णन तीन मूल विमाओं के रूप में किया जा सकता है। ये विमाएँ हैं- वर्ण, संतृप्ति एवं द्युति। **वर्ण** (hue) रंगों का ही एक गुण है। सरल शब्दों में, यह रंगों के नाम बताता है; जैसे- लाल, नीला तथा हरा। वर्ण तरंगदैर्ध्य के अनुसार घटता-बढ़ता रहता है तथा प्रत्येक रंग की पहचान विशिष्ट तरंगदैर्ध्य के आधार पर होती है। उदाहरण के लिए, नीले रंग का तरंगदैर्ध्य 465 नैनोमीटर तथा हरे रंग का तरंगदैर्ध्य 500 नैनोमीटर होता है। अवर्णक रंग; जैसे- काला, सफ़ेद एवं भूरा वर्ण के आधार पर नहीं पहचाने जाते हैं। **संतृप्ति** (saturation) एक मनोवैज्ञानिक गुण है जो किसी सतह अथवा वस्तु के वर्ण की सापेक्ष मात्रा से संबंधित होती

not to be republished © NCERT

है। एक तरंगदैर्ध्य का प्रकाश (एकवर्णी) अधिक संतृप्त प्रतीत होता है। जब हम कई तरंगदैर्ध्यों का मिश्रण करते हैं तो संतृप्ति की मात्रा घट जाती है। भूरा रंग पूर्णतया असंतृप्त होता है। **द्युति** (brightness) प्रकाश की प्रत्यक्षित तीव्रता होती है। यह वर्ण एवं अवर्णक दोनों रंगों के आधार पर बदलती रहती है। सफ़ेद एवं काला रंग द्युति विमा के शीर्ष एवं तल को प्रदर्शित करते हैं। सफ़ेद रंग में द्युति की मात्रा सबसे अधिक होती है, जबकि काले रंग में द्युति की मात्रा सबसे कम होती है।

रंग मिश्रण

रंगों में एक रोचक संबंध होता है। वे पूरक युग्मों का निर्माण करते हैं। सही अनुपात में मिश्रित करने के बाद पूरक रंग अवर्णक भूरा या सफ़ेद रंग उत्पन्न करते हैं। पूरक रंगों के उदाहरण हैं – लाल-हरा तथा पीला-नीला। लाल, हरा एवं नीला **मूल रंग** (primary colours) कहलाते हैं क्योंकि मिश्रित करने पर इन तीन रंगों के प्रकाश से कोई भी रंग बन सकता है। सबसे सामान्य उदाहरण टेलीविज़न की स्क्रीन है। उसमें नीले, लाल एवं हरे रंग के धब्बे पाए जाते हैं। इन तीन रंगों के संयोजनों से विभिन्न रंग एवं उनकी छटाएँ उत्पन्न होती हैं, जिन्हें हम टेलीविज़न की स्क्रीन पर देखते हैं।

उत्तर प्रतिमाएँ

यह दृष्टि संवेदनाओं से संबंधित एक बहुत ही रोचक गोचर है। दृष्टि क्षेत्र से चाक्षुष उद्दीपक के हट जाने के बाद भी उस उद्दीपक का प्रभाव कुछ समय तक बना रहता है। इसी प्रभाव को उत्तर प्रतिमा कहते हैं। उत्तर प्रतिमाएँ सम एवं विषम होती हैं। **सम उत्तर प्रतिमाएँ** (positive after images) वर्ण, संतृप्ति एवं द्युति के रूप में मूल उद्दीपक के सदृश होती हैं। तम-व्यनुकूलित आँखों के संक्षिप्त तीव्र उद्दीपन के बाद सामान्यतया ये घटित होती हैं। दूसरी ओर, **विषम उत्तर प्रतिमाएँ** (negative after images) पूरक रंगों में दिखाई देती हैं। जब कोई व्यक्ति एक विशेष रंग के धब्बे पर कम से कम 30 सेकण्ड तक ध्यान देता है और उसके बाद किसी तटस्थ पृष्ठभूमि (जैसे- सफ़ेद अथवा भूरी सतह) पर अपना ध्यान स्थानांतरित करता है तो ये प्रतिमाएँ उत्पन्न होती हैं। यदि व्यक्ति नीले रंग को देखता है तो विषम उत्तर प्रतिमा पीले रंग की होगी। इसी प्रकार, लाल रंग के उद्दीपक से हरे रंग की विषम उत्तर प्रतिमा उत्पन्न होगी।

श्रवण संवेदना

श्रवण भी एक महत्वपूर्ण संवेदन प्रकारता है। यह हमें विश्वसनीय स्थानिक सूचना देती है। किसी वस्तु अथवा व्यक्ति की तरफ मोड़ने के अतिरिक्त यह भाषित संप्रेषण में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। श्रवण संवेदना तब प्रारंभ होती है जब ध्वनि हमारे कान में प्रवेश करती है तथा सुनने के प्रमुख अंगों को उद्दीप्त करती है।

मानव कान

कान श्रवण उद्दीपकों का प्राथमिक ग्राही है। यद्यपि इसका सर्वज्ञात प्रकार्य सुनना है, किंतु यह शरीर-संतुलन को बनाए रखने में भी हमारी सहायता करता है। कान की संरचना तीन खंडों में विभक्त है- बाह्य कान, मध्य कान एवं आंतरिक कान (चित्र 5.2)।

बाह्य कान **:** इसमें दो प्रमुख संरचनाएँ होती हैं, इनके नाम कर्णपालि (पिन्ना) एवं *श्रवण-द्वार* हैं। पिन्ना उपास्थि की कीपदार संरचना होती है जो परिवेश से ध्वनि तरंगों को एकत्रित करती है। श्रवण-द्वार एक नलिका होती है जो बाल एवं मोम द्वारा रक्षित होती है। यह ध्वनि तरंगों को पिन्ना से *कर्ण पटह* तक ले जाती है।

मध्य कान **:** मध्य कान टिम्पैनम (कर्ण पटल) से प्रारंभ होता है, जो ध्वनि-कंपन के प्रति अति संवेदनशील एक पतली झिल्ली होती है। उसके बाद *टिम्पैनिक-गुहिका* होती है। यह *यूस्टेकी नली,* जो टिम्पैनिक गुहिका में वायु-दाब को बनाए रखती है, की सहायता से ग्रसनी से जुड़ी होती है। गुहिका से कंपन तीन अस्थिकाओं, जिन्हें *मैलियस* (मुग्दरक), *इनकस* (एन्विल) तथा *स्टेप्स* (स्टिरप) कहते हैं, से गुजरती है। यह ध्वनि कंपन की तीव्रता को लगभग 10 गुना बढ़ा देती है तथा उन्हें आंतरिक कान तक पहुँचाती है।

आंतरिक कान **:** आंतरिक कान की एक जटिल संरचना होती है जिसे झिल्लीदार-गहन कहते हैं, जो एक अस्थियुक्त आवरण (अस्थियुक्त-गहन) में रहता है। लसीका जैसा द्रव अस्थियुक्त-गहन एवं झिल्ली-गहन के बीच की जगह में पाया जाता है जिसे *परिलसीका* कहते हैं।

अस्थियुक्त-गहन में एक-दूसरे से समकोण पर तीन **अर्धवृत्ताकार नलिकाएँ** (semicircular canals), एक गुहिका जिसे **प्रघाण** (vestibule) कहते हैं तथा एक कुंडलित संरचना जिसे **कर्णावर्त** (cochlea) कहते हैं, होती

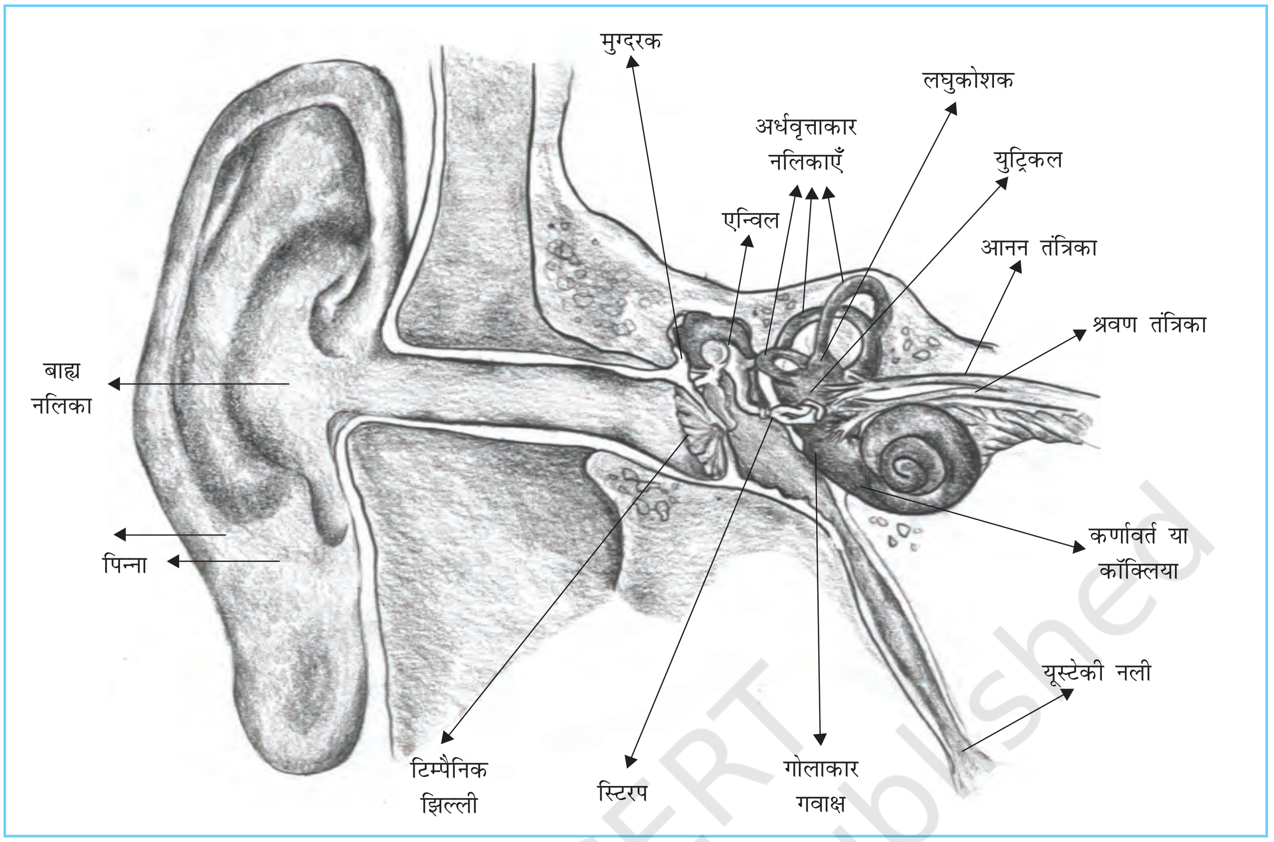

चित्र 5.2 : मानव कान की संरचना

हैं। अर्धवृत्ताकार नलिकाओं में सूक्ष्म लोम कोशिकाएँ होती हैं जो शरीर की संस्थिति में होने वाले परिवर्तनों एवं शरीर अभिविन्यास के प्रति अति संवेदनशील होती हैं। अस्थियुक्त कॉक्लिया के अंदर एक झिल्लीदार कॉक्लिया होता है जिसे **स्काला मीडिया** (scala media) कहते हैं। इसमें अंतर्लसीका भरा होता है तथा उसमें एक सर्पिल कुंडलित झिल्ली होती है जिसे **आधार झिल्ली** (basilar membrane) कहते हैं। इसमें सूक्ष्म लोम कोशिकाएँ एक शृंखला में व्यवस्थित होकर **कोर्ती अंग** (organ of corti) का निर्माण करती हैं। यही श्रवण का मुख्य अंग है।

कान की क्रियाविधि

पिन्ना ध्वनि कंपन को एकत्रित करती है तथा उसे श्रवण द्वार द्वारा कर्ण पटह तक पहुँचाती है। टिम्पैनिक गुहिका से कंपन तीन छोटी-छोटी अस्थिकाओं को स्थानांतरित होता है, जो उसकी शक्ति में वृद्धि करके उसे आंतरिक कान तक पहुँचाती हैं। आंतरिक कान के अंदर कॉक्लिया ध्वनि तरंगों को ग्रहण करता है। कंपन द्वारा अंतर्लसीका गतिमान होता है जो कोर्ती अंग में भी कंपन पैदा करता है। अंत में, आवेग श्रवण तंत्रिका को भेजा जाता है, जो कॉक्लिया के धरातल पर उत्पन्न होता है तथा श्रवण वल्कुट को जाता है जहाँ आवेग की व्याख्या होती है।

ध्वनि एक उद्दीपक के रूप में

हम सभी जानते हैं कि ध्वनि कान के लिए उद्दीपक होती है। बाह्य वातावरण में दाब विभिन्नता के कारण यह उत्पन्न होती है। कोई भी भौतिक गति आस-पास के माध्यम (जैसे- वायु) में बाधा उत्पन्न करती है तथा वायु अणुओं को आगे-पीछे करती रहती है। इससे दाब में परिवर्तन होता है, जो ध्वनि तरंगों के रूप में बाहर की तरफ फैलता है तथा 1100 फुट प्रति सेकण्ड की गति से चलता है। किसी तालाब में एक पत्थर फेंकने से जो लहरें उठती हैं, उसी प्रकार ये परिवर्तन तरंगों में चलते हैं। जब ये ध्वनि तरंगें हमारे कान से टकराती हैं, तो ये यांत्रिक दाब परिवर्तनों का एक सेट प्रारंभ करती हैं जो अंततः श्रवण ग्राहियों को उद्दीप्त करता है।

© NCERT not to be republished

सरलतम प्रकार की ध्वनि तरंग वह होती है जो एकल पुनरावृत्ति साइन तरंग के रूप में समय के साथ-साथ दाब में आनुक्रमिक परिवर्तन करती है (चित्र 5.3)। ध्वनि तरंगों का

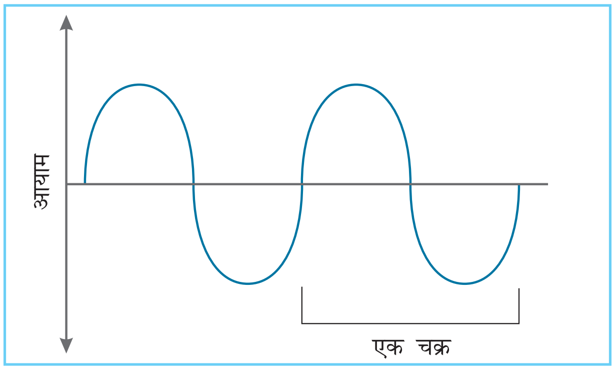

चित्र 5.3 : ध्वनि तरंग

आयाम (amplitude) एवं तरंगदैर्ध्य भिन्न-भिन्न हो सकता है। आयाम उद्दीपक के परिमाण का एक सामान्य माप होता है। यह दाब में परिवर्तन की मात्रा होती है अर्थात अणुओं की अपनी मूल स्थिति से विस्थापन की सीमा। चित्र 5.3 में ध्वनि तरंगों के आयाम को उनके माध्य स्थिति से शृंग अथवा चरम-विवृति बिंदु की दूरी के रूप में दर्शाया गया है। **तरंगदैर्ध्य** (wavelength) दो शृंगों के मध्य की दूरी होती है। ध्वनि तरंगों का निर्माण मूल रूप से वायु कणों के वैकल्पिक संपीडन एवं विसंपीडन (विरलन) के कारण होता है। संपीडन से विरलन एवं पुन: विरलन से संपीडन के कारण दाब में पूर्ण परिवर्तन से एक तरंग चक्र का निर्माण होता है।

ध्वनि तरंगों का वर्णन उनकी आवृत्ति के रूप में किया जाता है, जिन्हें चक्र प्रति सेकण्ड में मापा जाता है। इसकी इकाई को हर्ट्ज़ (hertz अथवा Hz) कहा जाता है। आवृत्ति एवं तरंगदैर्ध्य में प्रतिलोम संबंध होता है, अर्थात वे एक-दूसरे के विपरीत होते हैं। जब तरंगदैर्ध्य में वृद्धि होती है तो आवृत्ति घटती है और जब तरंगदैर्ध्य घटती है तो आवृत्ति में वृद्धि होती है। आयाम एवं आवृत्ति दोनों भौतिक विशेषताएँ हैं। इसके अतिरिक्त ध्वनि की तीन मनोवैज्ञानिक विमाएँ होती हैं - ध्वनि की तीव्रता, तारत्व और स्वर विशेषता।

ध्वनि की **तीव्रता** (loudness) उसके आयाम से निर्धारित होती है। ध्वनि तरंगें जिनका आयाम अधिक होता है वे अधिक तीव्र तथा जिनका आयाम कम होता है वे कम तीव्र या धीमी सुनाई पड़ती हैं। ध्वनि की तीव्रता डेसिबेल (db) में मापी जाती है। **तारत्व** (pitch) का संबंध ध्वनि की उच्चता अथवा न्यूनता से होता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त होने वाले सात स्वर अपने तारत्व को क्रमिक वृद्धि के रूप में प्रदर्शित करते हैं। आवृत्ति ध्वनि तरंगों के तारत्व को निर्धारित करती है। आवृत्ति उच्च होने पर तारत्व भी उच्च होती है। श्रवण का परास सामान्यतया 20 हर्ट्ज़ से 20 हजार हर्ट्ज़ तक होता है। **ध्वनिगुण** (timbre) का संबंध ध्वनि की प्रकृति या गुणवत्ता से होता है। उदाहरण के लिए, एक कार के इंजन की ध्वनि तथा एक व्यक्ति के बातचीत करने की ध्वनि विशेषता अथवा ध्वनिगुण के आधार पर भिन्न होती है। ध्वनिगुण अपनी ध्वनि तरंगों की जटिलता को प्रदर्शित करते हैं। प्राकृतिक पर्यावरण में पाई जाने वाली अधिकांश ध्वनियाँ जटिल होती हैं।

क्रियाकलाप 5.2

दृष्टि एवं श्रवण को सामान्यतया सबसे महत्वपूर्ण संवेदनाएँ माना जाता है। यदि इनमें से कोई एक आपके पास न रहे तो आपका जीवन कैसा होगा? किसके समाप्त होने अथवा नहीं रहने को आप अधिक अभिघातज मानेंगे? क्यों? विचार करें और लिखें।

यदि आप जादू-टोने से अपनी किसी एक संवेदना के निष्पादन में सुधार कर सकें, तो आप किसमें सुधार करना चाहेंगे? क्यों? क्या आप जादू-टोने के बिना इस एक संवेदना के निष्पादन में सुधार कर सकते हैं? सोचिए और लिखिए।

अपने अध्यापक से चर्चा कीजिए।

अवधानिक प्रक्रियाएँ

पिछले खंड में हमने कुछ संवेदी प्रकारताओं की चर्चा की है जो बाह्य जगत एवं हमारी आंतरिक व्यवस्था से सूचनाएँ संग्रह करने में हमारी सहायता करती हैं। अनेक प्रकार के उद्दीपक हमारी ज्ञानेंद्रियों से एक ही समय में टकराते रहते हैं, परंतु हम एक ही साथ सब पर ध्यान नहीं दे पाते हैं। उनमें से कुछ पर ही हम ध्यान दे पाते हैं। उदाहरण के लिए, जब आप अपनी कक्षा में प्रवेश करते हैं तो आपका सामना अनेक चीज़ों; जैसे- दरवाजा, दीवार, खिड़की, दीवार पर टंगे चित्र, मेज़, कुर्सी, विद्यार्थी, उनके बैग तथा पानी की बोतल आदि से होता है। परंतु इनमें से आप चयनात्मक रूप से एक समय में एक या दो चीज़ों पर ही ध्यान दे पाते हैं। *वह प्रक्रिया जिसके आधार पर उद्दीपक समूह से कुछ उद्दीपकों का चयन किया जाता है, उसी को सामान्यतया अवधान कहा जाता है।*

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि चयन के अतिरिक्त, अवधान अन्य गुणों; जैसे- सतर्कता, एकाग्रता तथा खोज आदि

© NCERT not to be republished

से भी संबंधित होता है। सतर्कता का आशय व्यक्ति की तत्परता से होता है जिससे वह अपने समक्ष आए उद्दीपक का सामना करता है। अपने विद्यालय की दौड़ में भाग लेते समय, आपने दौड़ प्रारंभ होने वाली रेखा पर प्रतिभागियों को दौड़ने के लिए सीटी बजने की प्रतीक्षा में सतर्क स्थिति में देखा होगा। एक समय में कुछ विशेष वस्तुओं के बोध के लिए अन्य वस्तुओं को दृष्टि से बाहर रखते हुए उस पर ध्यान केंद्रित करने की प्रक्रिया को एकाग्रता कहते हैं। उदाहरण के लिए, कक्षा में विद्यार्थी शिक्षक के भाषण पर ध्यान देते हैं तथा विद्यालय के विभिन्न भागों से आते सभी प्रकार के शोरगुल पर वे ध्यान नहीं देते हैं। खोज एक दशा होती है जिसमें प्रेक्षक वस्तुओं के समुच्चय में से उसके कुछ विशिष्ट उपसमुच्चयों पर ध्यान देता है। उदाहरण के लिए, जब आप अपने छोटे भाई या बहन को विद्यालय से लेने जाते हैं तो अनेक लड़के-लड़कियों में आप मात्र उन्हें ही देखते हैं। इस तरह के क्रियाकलापों के लिए लोगों को कुछ प्रयास करना पड़ता है। इस अर्थ में अवधान 'प्रयास नियतन' है।

अवधान का एक केंद्र और एक किनारा होता है। जब जानकारी का क्षेत्र किसी विशेष वस्तु या घटना पर केंद्रित होता है तब उसे अवधान का केंद्र या केंद्र बिंदु कहते हैं। इसके विपरीत जब वस्तुएँ या घटनाएँ जानकारी के केंद्र से दूर होती हैं और किसी व्यक्ति को उसकी जानकारी मात्र धुँधले रूप से होती है तब उसको अवधान के किनारे पर स्थित कहा जाता है।

अवधान को विविध प्रकार से वर्गीकृत किया गया है। एक प्रक्रिया-उन्मुख विचार इसे दो प्रकारों में विभाजित करता है - **चयनात्मक** (selective) और **संधृत** (sustained)। अब हम इन दो प्रकार के अवधानों की मुख्य विशेषताओं की संक्षेप में चर्चा करेंगे। कभी-कभी हम एक ही समय में दो भिन्न क्रियाकलापों पर ध्यान दे सकते हैं। जब ऐसा होता है तब हम इसे **विभक्त अवधान** (divided attention) कहते हैं। बॉक्स 5.2 में यह वर्णन किया गया है कि कब और कैसे अवधान का विभाजन संभव होता है।

चयनात्मक अवधान

चयनात्मक अवधान का संबंध मुख्यत: अनेक उद्दीपकों में से कुछ सीमित उद्दीपकों अथवा वस्तुओं के चयन से होता है। हमने पहले ही बताया है कि हमारे प्रात्यक्षिक तंत्र में सूचनाओं को प्राप्त करने एवं उनका प्रक्रमण करने की सीमित क्षमता होती है। इसका अर्थ यह है कि एक विशेष समय में वे मात्र कुछ उद्दीपकों पर ही ध्यान दे सकते हैं। प्रश्न यह है कि इनमें से किन उद्दीपकों का चयन और प्रक्रमण होगा। मनोवैज्ञानिकों ने उद्दीपकों के चयन को निर्धारित करने वाले अनेक कारकों का पता लगाया है।

चयनात्मक अवधान को प्रभावित करने वाले कारक

चयनात्मक अवधान को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। ये सामान्यतया उद्दीपकों की विशेषताओं तथा व्यक्तियों की विशेषताओं से संबंधित होते हैं। इन्हें सामान्यतया 'बाह्य' एवं 'आंतरिक' कारकों में वर्गीकृत किया जाता है।

बाह्य कारक (external factors) उद्दीपकों के लक्षणों से संबंधित होते हैं। अन्य चीज़ों के स्थिर होने पर उद्दीपकों के

बॉक्स 5.2 विभक्त अवधान

अपने दैनंदिन जीवन में हमारा एक ही समय में अनेक चीज़ों से सामना होता है। आपने कार चलाते हुए लोगों को अपने मित्र से बात करते हुए या मोबाइल फोन पर बात करते हुए अथवा चश्मा लगाते हुए अथवा संगीत सुनते हुए देखा होगा। यदि आप उन्हें निकट से देखें तो पता चलेगा कि वे अन्य क्रियाकलापों की तुलना में कार चलाने पर अधिक ध्यान दे रहे होते हैं, यद्यपि अन्य क्रियाकलापों पर भी कुछ ध्यान दिया जाता है। इससे समझ में आता है कि कुछ निश्चित दशाओं में एक से अधिक क्रियाकलापों पर एक ही समय में अधिक ध्यान दिया जा सकता है। यद्यपि ऐसा बहुत ही अभ्यस्त क्रियाकलापों के संदर्भ में ही संभव हो पाता है, क्योंकि वे लगभग स्वचालित हो जाती हैं तथा नए अथवा कम अभ्यस्त क्रियाकलापों की तुलना में उन पर कम ध्यान की आवश्यकता होती है।

***स्वचालित प्रक्रमण** की तीन प्रमुख विशेषताएँ होती हैं- (1) यह बिना किसी अभिप्राय के घटित होता है, (2) यह अचेतन रूप से घटित होता है, (3) इसमें विचार प्रक्रियाओं की आवश्यकता अल्प अथवा बिलकुल नहीं होती है (उदाहरणार्थ, इन क्रियाकलापों पर विचार किए बिना हम शब्दों को पढ़ सकते हैं अथवा जूतों के फीते बाँध सकते हैं)।*

2019-20

आकार, तीव्रता तथा गति अवधान के प्रमुख निर्धारक होते हैं। बड़ा, द्युतिमान तथा गतिशील उद्दीपक हमारे अवधान में शीघ्रता से आ जाता है। जो उद्दीपक नए होते हैं तथा सामान्य रूप से जटिल होते हैं वे भी सरलतापूर्वक हमारे अवधान में आ जाते हैं। अध्ययनों से ज्ञात है कि मनुष्य के फोटोचित्र अन्य निर्जीव वस्तुओं के फोटोचित्रों की तुलना में हमारे ध्यान में शीघ्रता से आ जाते हैं। इसी प्रकार, शाब्दिक कथनों की तुलना में लयबद्ध श्रवण उद्दीपक शीघ्रता से उद्दीप्त होते हैं। अवधान के लिए, आकस्मिक एवं तीव्र उद्दीपकों में ध्यानाकर्षण की अद्‌भुत क्षमता होती है।

आंतरिक कारक (internal factors) व्यक्ति के अंदर पाए जाते हैं। इन्हें दो मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है; जैसे- अभिप्रेरणात्मक कारक तथा संज्ञानात्मक कारक। **अभिप्रेरणात्मक कारकों** (motivational factors) का संबंध हमारी जैविक एवं सामाजिक आवश्यकताओं से होता है। जब हम भूखे होते हैं तो भोजन की हलकी गंध को भी हम सूँघ लेते हैं। जिस विद्यार्थी को परीक्षा देनी होती है, वह परीक्षा न देने वाले विद्यार्थी की तुलना में शिक्षक के भाषण पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है। **संज्ञानात्मक कारकों** (cognitive factors) के अंतर्गत अभिरुचि, अभिवृत्ति तथा पूर्वविन्यास आदि कारक आते हैं। वस्तुएँ अथवा घटनाएँ, जो रुचिकर होती हैं, व्यक्तियों के ध्यान में शीघ्रतापूर्वक आती हैं। इसी प्रकार, जिन वस्तुओं अथवा घटनाओं के प्रति हम अनुकूल दृष्टि से रुचि लेते हैं उन पर शीघ्रतापूर्वक ध्यान देते हैं। पूर्वविन्यास एक मानसिक स्थिति उत्पन्न करता है जो एक निश्चित दिशा में कार्य करने को प्रेरित करती है। यह तत्परता भी उत्पन्न करती है जिससे व्यक्ति एक विशेष उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया करने को उन्मुख होता है, अन्य के प्रति नहीं।

चयनात्मक अवधान के सिद्धांत

चयनात्मक अवधान की प्रक्रिया की व्याख्या के लिए अनेक सिद्धांतों का विकास हुआ है। हम इनमें से तीन सिद्धांतों की संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

निस्यंदक सिद्धांत का विकास ब्रॉडबेन्ट (Broadbent, 1956) ने किया था। इस सिद्धांत के अनुसार, अनेक उद्दीपक एक ही साथ हमारे ग्राहियों के पास पहुँचते हैं और गत्यवरोध की स्थिति उत्पन्न करते हैं। अल्पकालिक स्मृति तंत्र से होते हुए वे चयनात्मक निस्यंदक के पास पहुँचते हैं, जो उनमें से केवल एक उद्दीपक को ही उच्च स्तरीय प्रक्रमण के लिए भेजता है। अन्य उद्दीपकों की छँटाई उसी समय हो जाती है। इस तरह हम मात्र उसी एक उद्दीपक को जान पाते हैं जो चयनात्मक निस्यंदक से होकर आता है।

निस्यंदक क्षीणन सिद्धांत का विकास ट्रायसमैन (Triesman, 1962) ने ब्रॉडबेन्ट के सिद्धांत को संशोधित करके किया था। इस सिद्धांत के अनुसार, जो उद्दीपक एक विशेष समय में चयनात्मक निस्यंदक से नहीं जा पाते हैं वे पूर्णत: अवरुद्ध नहीं होते हैं। निस्यंदक मात्र उनकी शक्ति को दुर्बल कर देता है। इसलिए कुछ उद्दीपक चयनात्मक निस्यंदक से निकल कर प्रक्रमण के उच्च स्तर तक पहुँच जाते हैं। यह बताया गया है कि वैयक्तिक रूप से सार्थक उद्दीपक (जैसे- सामूहिक भोज में किसी का नाम) बहुत धीमी ध्वनि के बाद भी सुन लिए जाते हैं। ऐसे उद्दीपक यद्यपि बड़े दुर्बल होते हैं फिर भी कभी-कभी चयनात्मक निस्यंदक से निकल कर अनुक्रिया दे सकते हैं।

बहुविधिक सिद्धांत का विकास जॉन्सटन एवं हिन्ज़ (Johnston & Heinz, 1978) ने किया था। यह सिद्धांत मानता है कि अवधान एक लचीला तंत्र है जो अन्य उद्दीपकों की तुलना में किसी एक उद्दीपक का चयन तीन अवस्थाओं पर करता है। पहली अवस्था में उद्दीपक का संवेदी प्रतिरूपण (जैसे- चाक्षुष प्रतिमाएँ) निर्मित होता है; दूसरी अवस्था में आर्थी प्रतिरूपण (जैसे- वस्तुओं के नाम) निर्मित होता है तथा तीसरी अवस्था में संवेदी एवं आर्थी प्रतिरूपण हमारी चेतना में प्रवेश करता है। यह भी माना जाता है कि जब संदेशों का चयन अवस्था प्रक्रमण (पूर्व चयन) के आधार पर होता है तो कम मानसिक प्रयास की आवश्यकता पड़ती है और जब संदेशों का चयन अवस्था तीन प्रक्रमण (उत्तर चयन) के आधार पर होता है तो अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है।

संधृत अवधान

जहाँ चयनात्मक अवधान मुख्यत: उद्दीपकों के चयन से संबंधित होता है वहीं संधृत अवधान का संबंध एकाग्रता से होता है। यह हमारी उस योग्यता से संबंधित होता है जिससे हम अपना ध्यान किसी वस्तु अथवा घटना पर देर तक बनाए रखते हैं। इसे 'सतर्कता' भी कहते हैं। कभी-कभी लोगों को एक विशेष कार्य पर घंटों तक ध्यान देना पड़ता है। हवाई यातायात नियंत्रक एवं रेडार रीडर इस गोचर के उत्तम उदाहरण हैं। उन्हें

© NCERT not to be republished

बॉक्स 5.3 अवधान विस्तृति

हमारे अवधान में उद्दीपकों को ग्रहण करने की क्षमता सीमित होती है। वस्तुओं की संख्या, जिन पर कोई व्यक्ति बहुत कम समय (सेकण्ड का एक अंश) में ध्यान दे सकता है, उसे 'अवधान विस्तृति' अथवा 'प्रात्यक्षिक विस्तृति' कहते हैं। विशेष रूप से अवधान विस्तृति का आशय यह है कि कोई प्रेक्षक मात्र एक क्षणिक झलक देखने के बाद उद्दीपकों की एक जटिल सारणी से सूचनाओं की कितनी मात्रा ग्रहण कर सकता है। इसका निर्धारण 'टैकिस्टोस्कोप' नामक यंत्र के उपयोग से किया जा सकता है। अनेक प्रयोगों के आधार पर मिलर (Miller) ने बताया है कि हमारी अवधान विस्तृति सात से दो अधिक या दो कम की सीमा के भीतर बदलती रहती है। इसी को सामान्यतया 'जादुई संख्या' कहते हैं। इसका अर्थ है कि एक समय में लोग 5 से 7 संख्याओं पर ध्यान दे सकते हैं जो अपवाद की स्थिति में 9 या उससे अधिक हो सकती हैं। संभवतः यही कारण है कि मोटर साइकिलों या कारों की नंबर प्लेटों पर कुछ अक्षरों के साथ चार अंकों की संख्याएँ होती हैं। चालन के नियमों के उल्लंघन के समय पर यातायात पुलिस सरलता से अक्षरों सहित इन अंकों को पढ़ सकती है तथा नोट कर सकती है।

स्क्रीन पर सिगनलों को लगातार देखना एवं मॉनीटर करना पड़ता है। ऐसी स्थितियों में सिगनलों की प्राप्ति प्रायः पूर्वानुमान पर निर्भर नहीं होती है तथा सिगनलों की पहचान में हुई त्रुटियाँ घातक हो सकती हैं। इसलिए उन स्थितियों में अधिक सतर्कता की आवश्यकता होती है।

संधृत अवधान को प्रभावित करने वाले कारक

संधृत अवधान के कार्यों में व्यक्ति के निष्पादन में अनेक कारक सहायक अथवा अवरोधक हो सकते हैं। **संवेदन प्रकारता** (sensory modality) उनमें से एक है। चाक्षुष उद्दीपक की तुलना में श्रवण संबंधी उद्दीपक होने पर निष्पादन

बॉक्स 5.4 अवधान न्यूनता अतिक्रिया विकार

प्राथमिक विद्यालय के बच्चों में पाया जाने वाला यह एक अति सामान्य व्यवहार विकार है। इसमें आवेगशीलता, अधिक पेशीय सक्रियता तथा अवधान की अयोग्यता विशेष रूप से दिखाई देती हैं। लड़कियों की तुलना में यह विकार लड़कों में अधिक पाया जाता है। यदि प्रबंधन ठीक से नहीं किया जाता है तो अवधान की कठिनाइयाँ किशोरावस्था या प्रौढ़ वर्षों तक बनी रह जाती हैं। संधृत अवधान में कठिनाई इस विकार की प्रमुख विशेषता है जो बच्चों के अन्य विविध क्षेत्रों में परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिए, ऐसे बच्चे अधिक चित्त-अस्थिर होते हैं, वे अनुदेशों का पालन नहीं करते हैं, माता-पिता के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते हैं तथा इनके समकक्षी भी इन्हें नकारात्मक दृष्टि से देखते हैं। वे विद्यालय में अच्छा निष्पादन नहीं करते तथा विद्यालयों में मूल विषयों को पढ़ने या सीखने में बुद्धि की न्यूनता न होते हुए भी कठिनाइयों का अनुभव करते हैं।

अध्ययनों से इस विकार के जैविक आधार का कोई प्रमाण नहीं मिलता है, यद्यपि विकार का कुछ संबंध आहार संबंधी कारकों, विशेष रूप से भोजन के रंग, के साथ बताया गया है। दूसरी ओर, सामाजिक-मनोवैज्ञानिक कारक (जैसे- गृह पर्यावरण, पारिवारिक विकृति) अन्य कारकों की तुलना में अवधान न्यूनता अतिक्रिया विकार के लिए अधिक उत्तरदायी पाए गए हैं। वर्तमान परिस्थिति में अवधान न्यूनता अतिक्रिया विकार के बहुविध कारण और प्रभाव माने जाते हैं।

अवधान न्यूनता अतिक्रिया विकार के उपचार के संबंध में एक मत नहीं है। इसके लिए रिटैलिन नाम की एक दवा का अधिक उपयोग होता है जो बच्चों की अतिक्रिया एवं चित्त-अस्थिर होने की मात्रा को कम करती है तथा साथ ही उनके अवधान एवं एकाग्रता रखने की योग्यता में वृद्धि करती है। यद्यपि यह समस्या का उपचार नहीं करती है तथा इस प्रकार के नकारात्मक पार्श्व-प्रभाव; जैसे- कद एवं भार की सामान्य संवृद्धि में दमन, के रूप में परिणत होती है। दूसरी तरफ, व्यवहार प्रबंधन कार्यक्रम, जिनमें धनात्मक प्रबलन तथा सीखने वाली सामग्री एवं कृत्यों की प्रस्तुति ऐसी होती है कि उससे त्रुटियों में कमी आती है तथा तात्कालिक प्रतिप्राप्ति एवं सफलता को बढ़ावा मिलता है, बहुत उपयोगी पाए गए हैं। अवधान न्यूनता अतिक्रिया विकार का सफलतापूर्वक उपचार संज्ञानात्मक व्यवहारपरक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के साथ अच्छा रहता है जिसमें वांछित व्यवहार का पुरस्कार शाब्दिक आत्म-अनुदेश (विराम लें, चिंतन करें और तब कार्य करें) के उपयोग के प्रशिक्षण से जुड़ा होता है। इस क्रियाविधि के साथ, अवधान न्यूनता अतिक्रिया विकार से पीड़ित बच्चे अपना ध्यान कम विरत रखना तथा सहजता के साथ व्यवहार करना सीखते हैं - अधिगम जो सापेक्ष रूप से देर तक स्थिर रहता है।

© NCERT not to be republished

उत्कृष्ट होता है। **उद्दीपकों की स्पष्टता** (clarity of stimuli) दूसरा कारक है। तीव्र तथा देर तक बने रहने वाले उद्दीपक संधृत अवधान में सहायक होते हैं तथा अधिक अच्छा निष्पादन देते हैं। **कालिक अनिश्चितता** (temporal uncertainty) तीसरा कारक होता है। जब उद्दीपक नियमित अंतराल पर प्रकट होते हैं तो अनियमित अंतराल पर प्रकट होने वाले उद्दीपकों की तुलना में उन पर अधिक ध्यान दिया जाता है। **स्थानिक अनिश्चितता** (spatial uncertainty) चौथा कारक है। जब उद्दीपक एक निश्चित स्थान पर प्रकट होते हैं तो उन पर ठीक से ध्यान दिया जाता है, परंतु जब वे यादृच्छिक स्थितियों में प्रकट होते हैं तो उन पर ध्यान देना कठिन होता है।

अवधान के अनेक व्यावहारिक निहितार्थ होते हैं। कोई व्यक्ति वस्तुओं की कितनी संख्याओं को एक झलक में देखने के बाद ध्यान में रख सकता है, इसी आधार पर मोटरसाइकिलों एवं कारों के नंबर प्लेट बनाए जाते हैं जिससे कि यातायात नियमों के भंग होने की स्थिति में यातायात पुलिस इन नंबर प्लेटों को देख सके (बॉक्स 5.3)। विद्यालयों में बहुत से बच्चे अवधान की समस्या के कारण अच्छा निष्पादन नहीं कर पाते हैं। बॉक्स 5.4 में अवधान के एक विकार के विषय में रोचक सूचनाएँ दी गई हैं।

प्रात्यक्षिक प्रक्रियाएँ

पूर्व खंड में हमने देखा कि ज्ञानेंद्रियों के उद्दीपन के परिणामस्वरूप हम प्रकाश की क्षणदीप्ति अथवा ध्वनि अथवा घ्राण का अनुभव करते हैं। यह प्रारंभिक अनुभव, जिसे संवेदना कहते हैं, हमें ज्ञानेंद्रियों को उद्दीप्त करने वाले उद्दीपक की समझ प्रदान नहीं करता है। उदाहरण के लिए, हमें इससे प्रकाश, ध्वनि एवं सुगंध के स्रोत के विषय में जानकारी नहीं मिलती है। संवेदी तंत्र द्वारा प्रदान की गई कच्ची सामग्री से अर्थ प्राप्त करने के लिए हम इसका पुन: प्रक्रमण करते हैं। ऐसा करने से हम अपने अधिगम, स्मृति, अभिप्रेरणा, संवेग तथा अन्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के उपयोग द्वारा उद्दीपकों को अर्थवान बनाते हैं। *जिस प्रक्रिया से हम ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्रदान की गई सूचनाओं की पहचान करते हैं, व्याख्या अथवा उसको अर्थवान बनाते हैं उसे प्रत्यक्षण कहा जाता है।* उद्दीपकों अथवा घटनाओं की व्याख्या करने में लोग अपने ढंग से उनको रचित करते हैं। इस प्रकार, प्रत्यक्षण बाह्य अथवा आंतरिक जगत में पाए जाने वाली वस्तुओं अथवा घटनाओं की व्याख्या मात्र नहीं है, बल्कि अपने दृष्टिकोण के अनुसार वस्तुओं या घटनाओं की एक रचना भी है। अर्थवान बनाने की प्रक्रिया में कुछ उप-प्रक्रियाएँ अन्तर्निहित हैं जो चित्र 5.4 में प्रदर्शित की गई हैं।

प्रत्यक्षण के प्रक्रमण उपागम

हम किसी वस्तु की पहचान कैसे करते हैं? क्या हम किसी कुत्ते की पहचान इसलिए करते हैं कि हम उसके रोएँदार आवरण, उसके चार पैरों, उसकी आँखों, कानों आदि की पहचान पहले कर चुके हैं अथवा इन अंगों की पहचान हम इसलिए करते है क्योंकि पहले हमने कुत्ते की पहचान की है? यह विचार कि प्रत्यभिज्ञान प्रक्रिया अंशों से प्रारंभ होती है और जो समग्र प्रत्यभिज्ञान का आधार बनती है, उसे **ऊर्ध्वगामी प्रक्रमण** (bottom-up processing) कहते हैं। जब प्रत्यभिज्ञान प्रक्रिया समग्र से प्रारंभ होती है और उसके आधार पर विभिन्न घटकों की पहचान की जाती है तो उसे **अधोगामी प्रक्रमण** (top-down processing) कहते हैं। ऊर्ध्वगामी उपागम प्रत्यक्षण उद्दीपकों के विविध लक्षणों पर बल देता है तथा प्रत्यक्षण को एक मानसिक रचना की प्रक्रिया मानता है। अधोगामी उपागम प्रत्यक्षण करने वालों को महत्त्व देता है तथा प्रत्यक्षण को उद्दीपकों की प्रत्यभिज्ञान अथवा तदात्मीकरण की प्रक्रिया माना जाता है। अध्ययनों से प्रदर्शित होता है कि प्रत्यक्षण में दोनों प्रक्रियाएँ एक दूसरे से अंत:क्रिया करती हैं और हमें जगत की समझ प्रदान करती हैं।

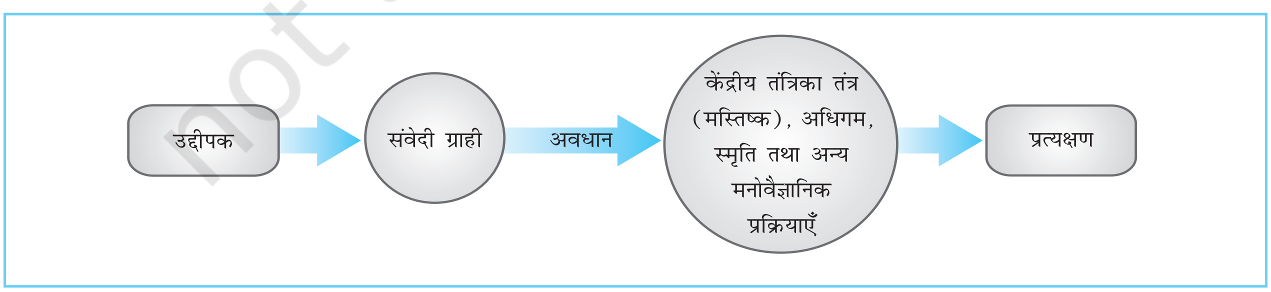

चित्र 5.4 : प्रत्यक्षण की उप-प्रक्रियाएँ

© NCERT not to be republished

प्रत्यक्षणकर्ता

मानव बाह्य जगत से उद्दीपकों को मात्र यांत्रिक रूप से अथवा निष्क्रिय रूप से ग्रहण करने वाले नहीं होते हैं। वे सर्जनशील होते हैं तथा बाह्य जगत को अपने ढंग से समझने का प्रयास करते हैं। इस प्रक्रिया में उनकी अभिप्रेरणाएँ एवं प्रत्याशाएँ, सांस्कृतिक ज्ञान, पूर्व अनुभव, तथा स्मृतियों के साथ-साथ मूल्य, विश्वास एवं अभिवृत्तियाँ बाह्य जगत को अर्थवान बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती हैं। उनमें से कुछ कारकों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

अभिप्रेरणा

प्रत्यक्षणकर्ता की आवश्यकताएँ एवं इच्छाएँ उसके प्रत्यक्षण को अत्यधिक प्रभावित करती हैं। लोग विभिन्न साधनों या उपायों से अपनी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति करना चाहते हैं। ऐसा करने का एक तरीका चित्र में वस्तुओं का प्रत्यक्षण ऐसी चीज़ों के रूप में करना है जिनसे उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति होगी। प्रत्यक्षण पर भूख के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए अनेक प्रयोग किए गए हैं। जब भूखे लोगों को कुछ अस्पष्ट चित्र दिखाए गए तो पाया गया कि तृप्त लोगों की तुलना में उन्होंने इन चित्रों का प्रत्यक्षण बहुधा आहार सामग्री के रूप में किया।

प्रत्याशाएँ अथवा प्रात्यक्षिक विन्यास

किसी दी गई स्थिति में हम जिसका प्रत्यक्षण कर सकते हैं उसकी प्रत्याशाएँ भी हमारे प्रत्यक्षण को प्रभावित करती हैं। प्रात्यक्षिक अंतरंगता अथवा प्रात्यक्षिक सामान्यीकरण का यह गोचर इस प्रवृत्ति का द्योतक है कि जब परिणाम यथार्थ रूप से बाह्य वास्तविकता को नहीं दिखाते हैं तब भी हम वही देखते हैं जिसको देखने की हम प्रत्याशा करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि आपका दूध देने वाला प्रतिदिन लगभग सांध्य 5.30 बजे दूध देता है तो किसी के द्वारा उसी समय के आसपास दरवाज़ा खटखटाने पर लगता है कि दूध देने वाला आया है, भले ही कोई और आया हो।

क्रियाकलाप 5.3

प्रत्याशा को निदर्शित करने के लिए अपने मित्र से आँखें बंद करने को कहिए। बोर्ड पर 12, 13, 14, 15 लिखिए। उससे 5 सेकण्ड के लिए आँख खोलने के लिए कहिए और बोर्ड पर देखने के लिए कहिए। अब नोट कीजिए कि उसने क्या देखा। केवल 12, 14, 15 को अ, स, द से प्रतिस्थापित करते रहिए, जैसे- 'अ 13 स द'। उसने पुन: जो कुछ देखा उसे नोट करने को कहिए। बहुत से लोग 13 के स्थान पर 'ब' लिखते हैं।

संज्ञानात्मक शैली

संज्ञानात्मक शैली का संबंध अपने पर्यावरण के साथ संगत तरीके से व्यवहार करने से है। हम जिस तरह पर्यावरण का प्रत्यक्षण करते हैं उसे यह सार्थक रूप से प्रभावित करती है। अपने पर्यावरण का प्रत्यक्षण करने में लोग विभिन्न संज्ञानात्मक शैली का उपयोग करते हैं। अध्ययनों में व्यापक रूप से प्रयुक्त शैली 'क्षेत्र आश्रित' एवं 'क्षेत्र अनाश्रित' संज्ञानात्मक शैली है। क्षेत्र आश्रित लोग बाह्य जगत का उसकी समग्रता के रूप में प्रत्यक्षण करते हैं अर्थात उसको सर्वव्यापी अथवा समग्र रूप में देखते हैं। दूसरी तरफ, क्षेत्र अनाश्रित लोग बाह्य जगत को उसकी छोटी इकाइयों में विच्छेद करते हैं अर्थात विश्लेषणात्मक अथवा विभेदित ढंग से देखते हैं।

चित्र 5.5 को देखिए। क्या आप चित्र में छिपे त्रिभुज को देख सकते हैं? आप उसको खोजने में कितना समय लेते हैं। आप अपनी कक्षा के अन्य विद्यार्थियों को देखिए कि वे त्रिभुज खोजने में कितना समय लेते हैं। जो लोग शीघ्रतापूर्वक खोज लेते हैं उन्हें 'क्षेत्र अनाश्रित' तथा जो अधिक समय लेते हैं उन्हें 'क्षेत्र आश्रित' कहा जाता है।

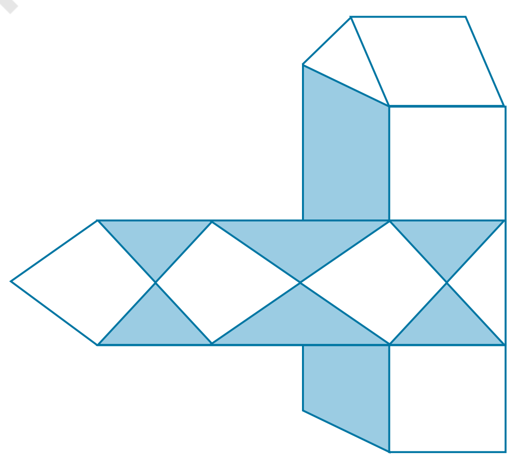

चित्र 5.5 : 'क्षेत्र आश्रित' एवं 'क्षेत्र अनाश्रित' संज्ञानात्मक शैली की जाँच के लिए एक एकांश

2019-20

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और अनुभव

विभिन्न सांस्कृतिक परिवेशों में लोगों को उपलब्ध विविध अनुभव एवं अधिगम के अवसर भी उनके प्रत्यक्षण को प्रभावित करते हैं। चित्रविहीन पर्यावरण से आने वाले लोग चित्रों में वस्तुओं की पहचान में असफल रहते हैं। हडसन (Hudson) ने अफ़्रीकी प्रयोज्यों द्वारा चित्रों के प्रत्यक्षण का अध्ययन किया तथा अनेक कठिनाइयों को देखा। बहुत से लोग चित्र में प्रदर्शित वस्तुओं की पहचान करने में सक्षम नहीं थे (जैसे - एण्टीलोप, स्पीयर)। वे चित्रों में दूरी का प्रत्यक्षण करने में भी असफल हुए तथा उन्होंने चित्रों की गलत व्याख्या की। एस्किमो बर्फ़ के विविध रूपों में अंतर करने में सक्षम होते हैं और हम वैसा नहीं कर पाते हैं। साइबेरियाई क्षेत्र में कुछ आदिवासी समूह रेण्डियर की त्वचा के रंगों में भेद कर लेते हैं जो हम नहीं कर पाते हैं।

इन अध्ययनों से ज्ञात होता है कि प्रत्यक्षण की प्रक्रिया में प्रत्यक्षणकर्ताओं की अहम भूमिका होती है। लोग अपनी व्यक्तिगत, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों के आधार पर उद्दीपकों का प्रक्रमण एवं व्याख्या अपने ढंग से करते हैं। इन कारकों के कारण हमारा प्रत्यक्षण न केवल अच्छी प्रकार से परिष्कृत होता है, बल्कि अशोधित भी होता है।

प्रात्यक्षिक संगठन के सिद्धांत

हमारा चाक्षुष क्षेत्र विविध प्रकार के अंशों; जैसे- बिंदु, रेखा तथा रंग आदि का एक संग्रह होता है। यद्यपि हम इन अंशों को संगठित समग्र अथवा पूर्ण वस्तु के रूप में देखते हैं। उदाहरण के लिए, हम साइकिल को एक पूर्ण वस्तु के रूप में देखते हैं, न कि विभिन्न भागों (जैसे- सीट, पहिया तथा हैण्डिल) के एक संग्रह के रूप में। चाक्षुष क्षेत्र को अर्थयुक्त समग्र के रूप में संगठित करने को **आकृति प्रत्यक्षण** (form perception) कहते हैं।

आपको आश्चर्य हो सकता है कि किसी वस्तु के विभिन्न भाग कैसे एक अर्थयुक्त समग्र में संगठित होते हैं। आप यह भी पूछ सकते हैं कि वे कौन से कारक हैं जो संगठन की इस प्रक्रिया को सुगम बनाते हैं अथवा उसमें अवरोध पैदा करते हैं।

अनेक विद्वानों ने ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया है, परंतु व्यापक रूप से स्वीकृत उत्तर अनुसंधानकर्ताओं के एक समूह के द्वारा दिया गया है। इस समूह को **गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिक** (gestalt psychologists) कहते हैं। उनमें कोहलर (Kohler), कोफ्का (Koffka) तथा वर्दीमर (Wertheimer) प्रमुख हैं। गेस्टाल्ट एक नियमित आकृति अथवा रूप को कहते हैं। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, हम विभिन्न उद्दीपकों को विविक्त अंशों के रूप में नहीं देखते हैं, बल्कि एक संगठित समग्र के रूप में देखते हैं, जिसका एक निश्चित रूप होता है। इनका विश्वास है कि किसी वस्तु का रूप उसके समग्र में होता है जो उनके अंशों के योग से भिन्न होता है। उदाहरण के लिए, फूलों के गुच्छे के साथ फूलदान एक समग्र है। यदि उसमें से फूल हटा दिए जाएँ तो भी फूलदान एक समग्र बना रहेगा। यह फूलदान की समग्राकृति है जो परिवर्तित हो गई। फूल के साथ फूलदान एक समग्राकृति है; तथा बिना फूल के यह दूसरी समग्राकृति है।

गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने यह भी बताया है कि हमारी प्रमस्तिष्कीय प्रक्रियाएँ हमेशा **अच्छी आकृति** (good figure) अथवा **सौष्ठव** (pragnanz) का प्रत्यक्षण करने के लिए उन्मुख होती हैं। इसलिए प्रत्येक चीज़ को हम एक संगठित रूप में देखते हैं। आदिम संगठन **आकृति-भूमि पृथक्करण** (figure-ground segregation) के रूप में दिखते हैं। जब हम किसी सतह पर देखते हैं तो सतह का कुछ भाग बहुत ही स्पष्ट रूप से एक अलग इकाई के रूप में दिखता है जबकि दूसरा भाग नहीं। उदाहरण के लिए, जब हम एक पृष्ठ पर शब्द अथवा दीवार पर पेंटिंग अथवा आकाश में उड़ते हुए पक्षी को देखते हैं, तो शब्द पेंटिंग एवं पक्षी पृष्ठभूमि से अलग दिखते हैं और आकृति के रूप में उनका प्रत्यक्षण होता है जबकि पृष्ठ, दीवार एवं आकाश आकृति के पीछे हो जाते हैं तथा पृष्ठभूमि के रूप में उनका प्रत्यक्षण होता है।

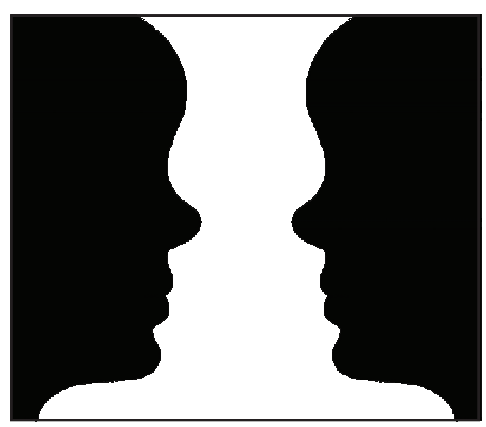

चित्र 5.6 : रूबिन का फूलदान

© NCERT not to be republished

इस अनुभव के परीक्षण के लिए चित्र 5.6 को देखें। आप या तो आकृति का सफ़ेद भाग देखेंगे जो फूलदान की तरह दिखता है अथवा आकृति का काला भाग देखेंगे जो दो चेहरों की भाँति दिखता है।

निम्न विशेषताओं के आधार पर हम आकृति को भूमि से अलग देखते हैं :

1. आकृति का एक निश्चित रूप होता है, जबकि पृष्ठभूमि अपेक्षाकृत रूपहीन होती है।
2. आकृति अपनी पृष्ठभूमि की अपेक्षा अधिक संगठित होती है।
3. आकृति की एक स्पष्ट परिरेखा होती है, जबकि पृष्ठभूमि परिरेखाहीन होती है।
4. आकृति पृष्ठभूमि से अलग दिखती है, जबकि पृष्ठभूमि आकृति के पीछे रहती है।
5. आकृति अधिक स्पष्ट होती है, सीमित तथा अपेक्षाकृत निकट होती है, जबकि पृष्ठभूमि अपेक्षाकृत अस्पष्ट, असीमित तथा हमसे दूर दिखती है।

ऊपर प्रस्तुत परिचर्चा से पता चलता है कि मानव जाति जगत को एक संगठित समग्र के रूप में देखती है न कि उसके विविक्त खंडों में। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने हमें अनेक नियम दिए हैं जो यह बताते हैं कि क्यों और कैसे हमारे चाक्षुष क्षेत्र में उद्दीपक अर्थवान समग्र वस्तुओं के रूप में संगठित होते हैं। आइए इनमें से कुछ नियमों को देखें।

निकटता का सिद्धांत

जो वस्तुएँ किसी स्थान अथवा समय में एक दूसरे के निकट होती हैं वे एक दूसरे से संबंधित अथवा एक समूह के रूप में दिखती हैं। उदाहरण के लिए, चित्र 5.7 बिंदुओं के एक वर्ग प्रतिरूप जैसा नहीं दिखता है, बल्कि बिंदुओं के स्तंभ की एक शृंखला के रूप में दिखाई देता है। इसी प्रकार, चित्र 5.7 पंक्तियों में बिंदुओं के एक समूह के रूप में दिखाई देता है।

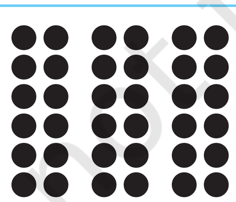

चित्र 5.7 : निकटता

समानता का सिद्धांत

जिन वस्तुओं में समानता होती है तथा विशेषताओं में वे एक दूसरे के समान होती हैं वे एक समूह के रूप में प्रत्यक्षित होती हैं। चित्र 5.8 में छोटे वृत्त एवं वर्ग क्षैतिज और उदग्र रूप से समरूप अंतराल पर हैं जिससे निकटता का प्रश्न नहीं उठता है। हम यहाँ एकांतर वृत्त एवं वर्ग के स्तंभ को देखते हैं।

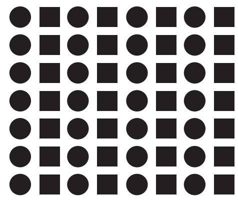

चित्र 5.8 : समानता

निरंतरता का सिद्धांत

यह सिद्धांत बताता है कि जब वस्तुएँ एक सतत प्रतिरूप प्रस्तुत करती हैं तो हम उनका प्रत्यक्षण एक दूसरे से संबंधित के रूप में करते हैं। उदाहरण के लिए, हमें *अ–ब* तथा *स–द* रेखाएँ एक दूसरे को काटती हुई दिखती हैं, तुलना में चार रेखाएँ केंद्र *प* पर मिल रही हैं।

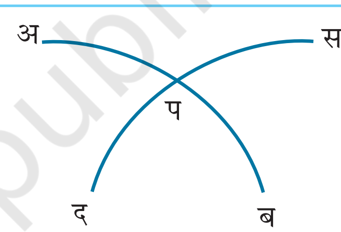

चित्र 5.9 : निरंतरता

लघुता का सिद्धांत

इस नियम के अनुसार लघुक्षेत्र बृहद् पृष्ठभूमि की तुलना में आकृति के रूप में दिखाई देते हैं। चित्र 5.10 में इस सिद्धांत के कारण हम वृत्त के अंदर काले क्रॉस को सफ़ेद क्रॉस की तुलना में आसानी से देखते हैं।

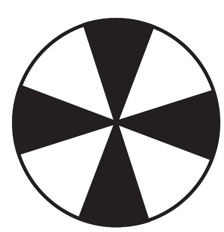

चित्र 5.10 : लघुता

सममिति का सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार असममित पृष्ठभूमि की तुलना में सममित क्षेत्र आकृति के रूप में दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए, चित्र 5.11 में काला क्षेत्र आकृति के रूप में दिखाई देता है (सममित गुणों के कारण) तथा असममित सफ़ेद क्षेत्र पृष्ठभूमि के रूप में दिखाई देता है।

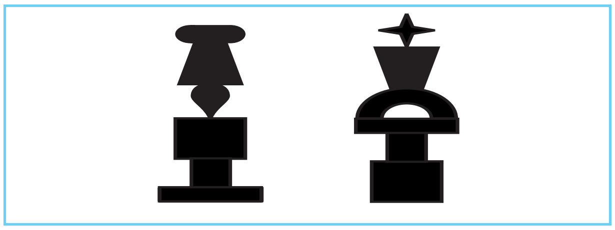

चित्र 5.11 : सममिति

अविच्छिन्नता का सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार जब एक क्षेत्र अन्य क्षेत्रों से घिरा होता है तो उसे हम आकृति के रूप में देखते हैं। उदाहरण के लिए, चित्र 5.12 की प्रतिमा सफ़ेद पृष्ठभूमि में पाँच चित्रों के रूप में दिखाई देती है न कि शब्द 'LIFT' के रूप में दिखती है।

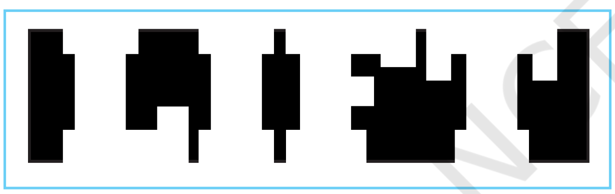

चित्र 5.12 : अविच्छिन्नता

पूर्ति का सिद्धांत

उद्दीपन में जो लुप्त अंश होता है उसे हम भर लेते हैं तथा वस्तुओं का प्रत्यक्षण उनके अलग-अलग भागों के रूप में नहीं बल्कि समग्र आकृति के रूप में करते हैं। उदाहरण के लिए, चित्र 5.13 में छोटे कोण, हमारी संवेदी आगत से प्राप्त वस्तु में रिक्ति को पूर्ण करने की प्रवृत्ति के कारण, एक त्रिभुज के रूप में दिखते हैं।

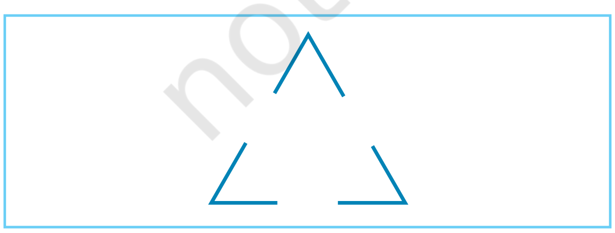

चित्र 5.13 : पूर्ति

स्थान, गहनता तथा दूरी प्रत्यक्षण

जिस चाक्षुष क्षेत्र या सतह पर वस्तुएँ रहती हैं, गतिशील होती हैं अथवा रखी जा सकती हैं उसे स्थान कहते हैं। जिस स्थान पर हम रहते हैं वह तीन विमाओं से संगठित होता है। हम विभिन्न वस्तुओं के मात्र स्थानिक अभिलक्षणों (जैसे- आकार, रूप, दिशा) को ही नहीं देखते, बल्कि उस स्थान में पाई जाने वाली वस्तुओं के बीच की दूरी को भी देखते हैं। यद्यपि हमारे दृष्टिपटल पर वस्तुओं की प्रक्षेपित प्रतिमाएँ समतल तथा द्विविम होती हैं (बाएँ, दाएँ, ऊपर, नीचे), परंतु हम स्थान में तीन विमाओं का प्रत्यक्षण करते हैं। ऐसा क्यों घटित होता हैं? यह इसलिए संभव होता है कि हम द्विविम दृष्टिपटलीय दृष्टि को त्रिविम प्रत्यक्षण के रूप में स्थानांतरित करने में समर्थ होते हैं। जगत को तीन विमाओं से देखने की प्रक्रिया को दूरी अथवा गहनता प्रत्यक्षण कहते हैं।

गहनता प्रत्यक्षण हमारे दैनंदिन जीवन में महत्वपूर्ण होता है। उदाहरण के लिए, जब हम गाड़ी चलाते हैं तो हम गहराई का उपयोग निकट आती हुई गाड़ी की दूरी जानने के लिए करते हैं अथवा जब हम सड़क पर टहलते हुए किसी व्यक्ति को पुकारते हैं तो हम यह निश्चय करते हैं कि कितनी तीव्र आवाज में पुकारा जाए।

गहराई के प्रत्यक्षण में हम दो प्रमुख सूचना स्रोतों, जिन्हें संकेत कहा जाता है, पर निर्भर करते हैं। एक को द्विनेत्री संकेत कहते हैं, क्योंकि इसमें दोनों आँखों की आवश्यकता होती है। दूसरे को एकनेत्री संकेत कहते हैं क्योंकि इसमें गहनता प्रत्यक्षण के लिए मात्र एक आँख का उपयोग होता है। ऐसे अनेक संकेतों का उपयोग द्विविम प्रतिमा को त्रिविम प्रत्यक्षण में परिवर्तित करने के लिए किया जाता है।

एकनेत्री संकेत (मनोवैज्ञानिक संकेत)

गहनता प्रत्यक्षण के एकनेत्री संकेत तब प्रभावी होते हैं जब वस्तुओं को केवल एक आँख से देखा जाता है। ऐसे संकेतों का उपयोग कलाकार अपनी द्विविम पेंटिंग में गहराई प्रदर्शित करने के लिए करते हैं। इसलिए इन्हें चित्रीय संकेत भी कहते हैं। कुछ महत्वपूर्ण एकनेत्री संकेत जो द्विविम सतहों में गहराई एवं दूरी का निर्णय लेने में हमारी सहायता करते हैं उनका वर्णन नीचे किया जा रहा है। आपको इनमें से कुछ का अनुप्रयोग चित्र 5.14 में मिलेगा।

© NCERT not to be republished

चित्र 5.14 : एकनेत्री संकेत

ऊपर दिया गया चित्र आपको कुछ एकनेत्री संकेतों जैसे आच्छादन और सापेक्ष आकार को समझने में मदद करेगा (वृक्षों को देखिए)। इस चित्र में आप कौन-से अन्य संकेतों को ढूँढ़ सकते हैं?

सापेक्ष आकार : समान वस्तुओं के साथ वर्तमान एवं भूतकाल के अनुभव के आधार पर दूरी के निर्णय में दृष्टिपटलीय प्रतिमा का आकार सहायता करता है। जैसे ही वस्तु दूर जाती है वैसे ही दृष्टिपटलीय प्रतिमा छोटी से छोटी होती जाती है। जब कोई वस्तु छोटी दिखती है तो हम उसे दूर में स्थित तथा बड़ी दिखने पर निकट में स्थित के रूप में उसका प्रत्यक्षण करते हैं।

आच्छादन अथवा अतिव्याप्ति : ये संकेत तब प्रयुक्त होते हैं जब एक वस्तु के कुछ भाग किसी दूसरी वस्तु से आच्छादित हो जाते हैं। जो वस्तु आच्छादित होती है वह दूर तथा जो वस्तु आच्छादन करती है वह निकट दिखाई देती है।

रेखीय परिप्रेक्ष्य : इससे इस गोचर का पता चलता है कि जो वस्तुएँ दूर होती हैं वे निकट की वस्तुओं की तुलना में एक दूसरे के निकट दिखती हैं। उदाहरण के लिए, समानान्तर रेखाएँ, जैसे- रेल की पटरियाँ दूरी बढ़ने पर एक दूसरे में मिलती हुई दिखती हैं तथा लगता है कि वे क्षैतिज पर समाप्त हो गई हैं। रेखाएँ जितनी एक दूसरे में मिलती हैं वे उतनी ही दूर दिखती हैं।

आकाशी परिप्रेक्ष्य : हवा में धूल एवं आर्द्रता के सूक्ष्म कण होते हैं जिनसे दूर की वस्तुएँ धुँधली या अस्पष्ट दिखती हैं। इस प्रभाव को आकाशी परिप्रेक्ष्य कहते हैं। उदाहरण के लिए, दूर के पहाड़ वातावरण में विकीर्ण नीले प्रकाश के कारण नीले दिखाई देते हैं, जबकि यही पहाड़ निकट दिखाई देते हैं जब वातावरण स्वच्छ होता है।

प्रकाश एवं छाया : प्रकाश में वस्तु के कुछ भाग अधिक प्रकाशित होते हैं, जबकि कुछ भाग अंधकार में पड़ जाते हैं। वस्तु की दूरी के संबंध में प्रकाशित भाग एवं छाया हमें सूचनाएँ प्रदान करती हैं।

सापेक्ष ऊँचाई : लंबी वस्तुएँ प्रत्यक्षण करने पर प्रेक्षक के निकट दिखती हैं तथा छोटी वस्तुएँ बहुत दूर दिखाई देती हैं। जब हम दो वस्तुओं के एकसमान आकार के होने की प्रत्याशा करते हैं और वे समान नहीं होती हैं, तो उसमें जो बड़ी होती है वह निकट की तथा जो छोटी होती है वह दूर की दिखाई देती है।

रचनागुण प्रवणता : यह एक ऐसा गोचर है जिसके द्वारा हमारे चाक्षुष क्षेत्र, जिनमें तत्वों की सघनता अधिक होती है, दूर दिखाई देते हैं। चित्र 5.15 में जैसे-जैसे हम दूर देखते जाते हैं पत्थरों की सघनता बढ़ती जाती है।

चित्र 5.15 : रचनागुण प्रवणता

गतिदिगंतराभास : यह एक गतिक एकनेत्री संकेत होता है, इसलिए यह चित्रीय संकेत नहीं समझा जाता है। यह तब घटित होता है जब विभिन्न दूरी की वस्तुएँ एक भिन्न सापेक्ष गति से गतिमान होती हैं। निकट की वस्तुओं की तुलना में दूरस्थ वस्तुएँ धीरे-धीरे गति करती हुई प्रतीत होती हैं। वस्तुओं की गति की दर उसकी दूरी का एक संकेत प्रदान करती है। उदाहरण के लिए, जब हम एक बस में यात्रा करते हैं तो निकट की वस्तुएँ बस की दिशा के विपरीत गतिमान होती हैं, जबकि दूर की वस्तुएँ बस की दिशा के साथ गतिमान होती हैं।

2019-20

द्विनेत्री संकेत (शारीरिक संकेत)

त्रिविम स्थान में गहनता प्रत्यक्षण के कुछ महत्वपूर्ण संकेत दोनों आँखों से प्राप्त होते हैं। इनमें से तीन विशेष रूप से रोचक हैं।

दृष्टिपटलीय अथवा द्विनेत्री असमता : चूँकि दोनों आँखों की स्थिति हमारे सिर में भिन्न होती है, इसलिए दृष्टिपटलीय असमता घटित होती है। वे एक दूसरे से क्षैतिज रूप से लगभग 6.5 सेंटीमीटर की दूरी पर अलग-अलग होती हैं। इस दूरी के कारण एक ही वस्तु की प्रत्येक आँख की रेटिना पर प्रक्षेपित प्रतिमाएँ कुछ भिन्न होती हैं। दोनों प्रतिमाओं के मध्य इस विभेद को दृष्टिपटलीय असमता कहते हैं। मस्तिष्क अधिक दृष्टिपटलीय असमता की व्याख्या एक निकट की वस्तु के रूप में तथा कम दृष्टिपटलीय असमता की व्याख्या एक दूर की वस्तु के रूप में करता है, क्योंकि दूर की वस्तुओं की असमता कम तथा निकट की वस्तुओं की असमता अधिक होती है।

अभिसरण : जब हम आस-पास की वस्तु को देखते हैं तो हमारी आँखें अंदर की ओर अभिसरित होती हैं, जिससे प्रतिमा प्रत्येक आँख की गर्तिका पर आ सके। मांसपेशियों का एक समूह, आँखें जिस सीमा तक अंदर की ओर परिवर्तित होती हैं के संबंध में संदेश मस्तिष्क को भेजता है और इन संदेशों की व्याख्या गहनता प्रत्यक्षण के संकेतों के रूप में की जाती है। जैसे-जैसे वस्तु प्रेक्षक से दूर होती जाती है वैसे-वैसे अभिसरण की मात्रा घटती जाती है। अभिसरण का अनुभव आप स्वयं कर सकते हैं- एक उँगली को अपनी नाक के सामने रखिए और उसे धीरे-धीरे निकट लाइए। जैसे-जैसे आपकी आँखें अंदर की ओर परिवर्तित होंगी अथवा अभिसरित होंगी, वैसे-वैसे वस्तुएँ निकट दिखाई देंगी।

समंजन : समंजन एक प्रक्रिया है जिसमें पक्ष्माभिकी पेशियों की सहायता से हम प्रतिमा को दृष्टिपटल पर फोकस करते हैं। ये मांसपेशियाँ आँख के लेन्स की सघनता को परिवर्तित कर देती हैं। यदि वस्तु दूर चली जाती है (दो मीटर से अधिक), तब मांसपेशियाँ शिथिल रहती हैं। जैसे ही वस्तु निकट आती है, मांसपेशियों में संकुचन की क्रिया होने लगती है तथा लेन्स की सघनता बढ़ जाती है। मांसपेशियों के संकुचन की मात्रा का संकेत मस्तिष्क को भेज दिया जाता है, जो दूरी के लिए संकेत प्रदान करता है।

क्रियाकलाप 5.4

अपने सामने एक पेंसिल रखिए। अपनी दायीं आँख बंद करके पेंसिल पर फोकस कीजिए। अब दायीं आँख खोलिए एवं बायीं आँख बंद कीजिए। यही कार्य क्रमशः दोनों आँखों से करते रहिए। पेंसिल आपके चेहरे के सामने एक किनारे से दूसरे किनारे तक घूमती हुई प्रतीत होगी।

प्रात्यक्षिक स्थैर्य

जब हम गतिशील होते हैं तो पर्यावरण से प्राप्त संवेदी सूचनाएँ लगातार परिवर्तित होती रहती हैं। इसके बाद भी हम वस्तु के एक स्थिर प्रत्यक्षण की रचना करते हैं चाहे उन वस्तुओं को हम किसी भी दिशा से तथा प्रकाश की किसी भी तीव्रता स्तर में देखें। संवेदी ग्राहियों के उद्दीपन में परिवर्तन के बाद भी वस्तुओं का सापेक्षिक स्थिर प्रत्यक्षण ही प्रात्यक्षिक स्थैर्य कहलाता है। यहाँ हम तीन प्रकार के प्रात्यक्षिक स्थैर्यों की विवेचना करेंगे जिनका हम सामान्यतया अपने चाक्षुष क्षेत्र में अनुभव करते हैं।

आकार स्थैर्य

आँख से वस्तु की दूरी में परिवर्तन के साथ हमारे दृष्टिपटल पर प्रतिमा के आकार में परिवर्तन होता है। जैसे-जैसे उसकी दूरी बढ़ती है, प्रतिमा छोटी होती जाती है। दूसरी तरफ हमारा अनुभव बताता है कि एक सीमा तक वस्तु एक ही आकार की लगती है और उस पर दूरी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। उदाहरण के लिए, जब आप दूर से अपने मित्र के पास पहुँचते हैं तो आपके मित्र के आकार का आपका प्रत्यक्षण बहुत परिवर्तित नहीं होता है, भले ही दृष्टिपटलीय प्रतिमा (दृष्टिपटल पर प्रतिमा) बड़ी हो जाती है। प्रेक्षक एवं दृष्टिपटलीय प्रतिमा के आकार से उनकी दूरी में होने वाले परिवर्तन के साथ वस्तुओं के प्रत्यक्षित आकार के सापेक्षिक स्थिर रहने की यह प्रवृत्ति ही आकार स्थैर्य कहलाती है।

आकृति स्थैर्य

अपनी उन्मुखता में अंतर के परिणामस्वरूप दृष्टिपटलीय प्रतिमा के रूप में परिवर्तन के बाद भी हमारे प्रत्यक्षण में परिचित वस्तुओं की आकृति अपरिवर्तित रहती है। उदाहरण के लिए, रात्रि-भोजन के प्लेट का रूप वही रहता है, चाहे उसकी

© NCERT not to be republished

दृष्टिपटलीय प्रतिमा एक वृत्त या एक दीर्घवृत्त या एक छोटी सी रेखा (यदि प्लेट को किनारे से देखा जाए) हो। इसे आकृति स्थैर्य भी कहते हैं।

द्युति स्थैर्य

चाक्षुष वस्तुओं में केवल आकृति एवं आकार का स्थैर्य नहीं होता, बल्कि उनके सफ़ेद, भूरा अथवा काला होने की मात्रा में भी स्थैर्य होता है, भले ही उनसे परावर्तित भौतिक ऊर्जा की मात्रा में पर्याप्त परिवर्तन हो। दूसरे शब्दों में, हमारी आँखों में पहुँचने वाले परावर्तित प्रकाश की मात्रा में परिवर्तन होने के बाद भी द्युति के विषय में हमारा अनुभव परिवर्तित नहीं होता है। प्रदीप्ति की भिन्न-भिन्न मात्रा में भी द्युति को स्थिर बनाए रखने की प्रवृत्ति को आभासी द्युति स्थैर्य कहते हैं। उदाहरण के लिए, किसी काग़ज़ की सतह का प्रत्यक्षण यदि सूर्य के प्रकाश में सफ़ेद रंग का होता है तो वह कमरे के प्रकाश में भी सफ़ेद ही होगा। इसी प्रकार, कोयला जो सूर्य के प्रकाश में काला दिखता है वह कमरे के प्रकाश में भी काला ही दिखता है।

भ्रम

हमारे प्रत्यक्षण सर्वदा तथ्यानुकूल नहीं होते हैं। कभी-कभी हम संवेदी सूचनाओं की सही व्याख्या नहीं कर पाते हैं। इसके परिणामस्वरूप भौतिक उद्दीपक एवं उसके प्रत्यक्षण में सुमेल नहीं हो पाता है। हमारी ज्ञानेंद्रियों से प्राप्त सूचनाओं की गलत व्याख्या से उत्पन्न गलत प्रत्यक्षण को सामान्यतया भ्रम कहते हैं। कम या अधिक हम सभी इसका अनुभव करते हैं। ये बाह्य उद्दीपन की स्थिति में उत्पन्न होते हैं और समान रूप से प्रत्येक व्यक्ति इसका अनुभव करता है। इसलिए, भ्रम को 'आदिम संगठन' भी कहा जाता है। यद्यपि भ्रम का अनुभव हमारे किसी भी ज्ञानेंद्रिय के उद्दीपन से हो सकता है, तथापि मनोवैज्ञानिकों ने अन्य संवेदी प्रकारताओं की तुलना में चाक्षुष भ्रम का अधिक अध्ययन किया है।

कुछ प्रात्यक्षिक भ्रम सार्वभौम होते हैं और सभी लोगों में पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए, रेल की पटरियाँ आपस में मिलती हुई सभी को दिखाई देती हैं। ऐसे भ्रमों को सार्वभौम अथवा स्थायी भ्रम कहते हैं, क्योंकि ये अनुभव अथवा अभ्यास से परिवर्तित नहीं होते हैं। कुछ अन्य भ्रम एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में परिवर्तित होते रहते हैं; इन्हें 'वैयक्तिक भ्रम' कहते हैं। इस खंड में हम कुछ महत्वपूर्ण चाक्षुष भ्रमों का वर्णन करेंगे।

ज्यामितीय भ्रम

चित्र 5.16 में मूलर-लायर भ्रम प्रदर्शित किया गया है । हम सभी 'अ' रेखा को 'ब' रेखा की तुलना में छोटी देखते हैं, जबकि दोनों रेखाएँ समान हैं। यह भ्रम बच्चों द्वारा भी अनुभव किया जाता है। कुछ अध्ययन बताते हैं कि पशु भी कुछ कम या अधिक हम लोगों की तरह ही इस भ्रम का अनुभव करते हैं। मूलर-लायर भ्रम के अतिरिक्त, मानव जाति (पक्षी एवं पशु) द्वारा कई अन्य चाक्षुष भ्रमों का भी अनुभव किया जाता है। चित्र 5.17 में आप ऊर्ध्वाधर एवं क्षैतिज रेखाओं का भ्रम देख सकते हैं। यद्यपि दोनों रेखाएँ समान हैं, फिर भी हम क्षैतिज रेखा की तुलना में ऊर्ध्वाधर रेखा का प्रत्यक्षण बड़ी रेखा के रूप में करते हैं।

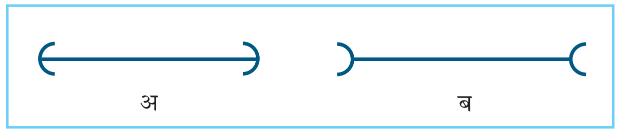

चित्र 5.16 : मूलर-लायर भ्रम

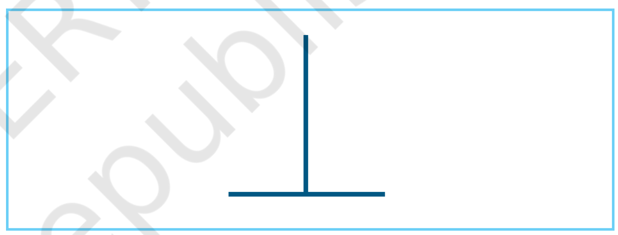

चित्र 5.17 : ऊर्ध्वाधर-क्षैतिज भ्रम

आभासी गतिभ्रम

जब कुछ गतिहीन चित्रों को एक के बाद दूसरा करके एक उपयुक्त दर से प्रक्षेपित किया जाता है तो हमें इस भ्रम का अनुभव होता है। इस भ्रम को **फ़ाई-घटना** (phi-phenomenon) कहा जाता है। जब हम गतिशील चित्रों को सिनेमा में देखते हैं तो हम इस प्रकार के भ्रम से प्रभावित होते हैं। जलते-बुझते बिजली की रोशनी के अनुक्रमण से भी इस प्रकार का भ्रम उत्पन्न होता है। एक अनुक्रम में दो या दो से अधिक बत्तियों को एक यंत्र की सहायता से प्रस्तुत करके प्रायोगिक रूप से इस घटना का अध्ययन किया जा सकता है। वर्दीमर ने द्युति, आकार, स्थानिक अंतराल एवं विभिन्न बत्तियों की कालिक सन्निधि के उपयुक्त स्तरों की उपस्थिति को महत्वपूर्ण माना है। इनकी अनुपस्थिति में प्रकाश-बिंदु गतिशील नहीं दिखते हैं। ये एक बिंदु अथवा एक के बाद दूसरा प्रकट

© NCERT not to be republished

होने वाले विभिन्न बिंदुओं के रूप में दिखाई देंगे परंतु इनसे गति का अनुभव नहीं होगा।

भ्रमों के अनुभव से ज्ञात होता है कि संसार जैसा है लोग इसे सदा उसी रूप में नहीं देखते हैं, बल्कि वे इसके निर्माण में व्यस्त रहते हैं। कभी-कभी यह उद्दीपकों के लक्षणों पर आधारित होता है और कभी-कभी एक विशेष पर्यावरण में उनके अनुभवों पर आधारित होता है। अगले खंड में इस बात को पुन: स्पष्ट किया जाएगा।

प्रत्यक्षण पर सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव

अनेक मनोवैज्ञानिकों ने प्रत्यक्षण की प्रक्रिया का अध्ययन विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों में किया है। जिन प्रश्नों का उत्तर वे इन अध्ययनों द्वारा खोजते हैं; वे हैं – क्या विभिन्न सांस्कृतिक स्थितियों में रहने वाले लोगों का प्रात्यक्षिक संगठन एकसमान होता है? क्या प्रात्यक्षिक प्रक्रियाएँ सार्वभौम होती हैं, अथवा विभिन्न सांस्कृतिक स्थितियों में वे बदलती रहती हैं? चूँकि हम जानते हैं कि संसार के विभिन्न भागों में रहने वाले लोग एक दूसरे से भिन्न दिखते हैं, इसलिए अनेक मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि संसार को देखने का उनका तरीका कुछ पहलुओं में भिन्न होना चाहिए। आइए चित्रों तथा अन्य चित्रीय सामग्रियों के भ्रम के प्रत्यक्षण से संबंधित कुछ अध्ययनों को देखें।

आप मूलर-लायर तथा ऊर्ध्वाधर-क्षैतिज भ्रम चित्रों से परिचित हो चुके हैं। मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे भ्रम चित्रों का उपयोग यूरोप, अफ़्रीका तथा अन्य जगहों पर रहने वाले लोगों के अनेक समूहों के साथ किया है। सेगॉल (Segall), कैंपबेल (Campbell) तथा हर्सकोविट्स (Herskovits) ने भ्रम संवेद्यता के संबंध में विस्तृत अध्ययन किया है जिसमें उन्होंने अफ़्रीका के दूरवर्ती गाँवों तथा पश्चिमी देश के शहरी क्षेत्रों से प्रतिदर्श लिए। यह पाया गया कि अफ़्रीका वाले प्रयोज्यों में क्षैतिज-ऊर्ध्वाधर भ्रम की अधिक संवेद्यता मिली, जबकि पश्चिमी देश के प्रयोज्यों में मूलर-लायर भ्रम की अधिक संवेद्यता मिली। अन्य अध्ययनों में भी इसी तरह के परिणाम प्राप्त हुए हैं। सघन वनों में रहते हुए अफ़्रीकी प्रयोज्यों ने ऊर्ध्वाधरता का नियमित रूप से अनुभव किया था (जैसे- बड़े वृक्ष) तथा उनकी यह प्रवृत्ति हो गई थी कि वे इनका अधिक अनुमान करने लगे। पश्चिमी प्रयोज्यों, जो उचित कोणों से अभिलक्षित पर्यावरण में रह रहे थे, में यह प्रवृत्ति विकसित हुई कि वे रेखाओं की लंबाई जो दोनों तरफ से बंद थी, जैसे- वाणाग्र का कम अनुमान करने लगे। इस निष्कर्ष की पुष्टि अन्य अध्ययनों में हुई। इनसे यह पता चलता है कि प्रत्यक्षण की आदतें विभिन्न सांस्कृतिक स्थितियों में अलग-अलग तरीके से सीखी जाती हैं।

कुछ अध्ययनों में विभिन्न सांस्कृतिक स्थितियों में रहने वाले लोगों को वस्तुओं की पहचान तथा उनकी गहराई की व्याख्या के लिए अथवा उनमें प्रतिरूपित अन्य घटनाओं के कुछ चित्र दिए गए थे। हडसन (Hudson) ने अफ़्रीका में एक प्रारंभिक अध्ययन किया तथा पाया कि जिन लोगों ने चित्र कभी नहीं देखा था, उन्हें उनमें प्रदर्शित की गई वस्तुओं की पहचान एवं उनकी गहराई के संकेतों (जैसे- अध्यारोपण) की व्याख्या करने में बड़ी कठिनाई हुई। यह बताया गया कि घर में दिए गए अनौपचारिक अनुदेश तथा चित्रों के प्रति आभ्यासिक उद्भासन चित्रीय गहनता प्रत्यक्षण के कौशल को बनाए रखने के लिए आवश्यक होते हैं। सिन्हा (Sinha) एवं मिश्र (Mishra) ने चित्रीय प्रत्यक्षण पर कई अध्ययन किए हैं। इन्होंने विविध सांस्कृतिक स्थितियों में रहने वाले लोगों, जैसे – वन में रहने वाले शिकारी एवं जनसमूह, गाँवों में रहने वाले किसान तथा शहरों में नौकरी करने एवं रहने वालों, को विविध प्रकार के चित्र देकर उनके चित्रीय प्रत्यक्षण का अध्ययन किया था। उनके अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि चित्रों की व्याख्या लोगों के सांस्कृतिक अनुभवों से गहन रूप से संबंधित होती है। जहाँ सामान्यतया लोग चित्रों में परिचित वस्तुओं का प्रत्यभिज्ञान कर सकते हैं, वहीं जो लोग चित्रों से अधिक परिचित नहीं होते, उन्हें चित्रों में दिखाई गई क्रियाओं या घटनाओं की व्याख्या में कठिनाई होती है।

प्रमुख पद

निरपेक्ष सीमा, उत्तर प्रतिमाएँ, द्विनेत्री संकेत, ऊर्ध्वगामी प्रक्रमण, कर्णावर्त, शंकु, तम-व्यनुकूलन, गहनता प्रत्यक्षण, भेद सीमा, विभक्त अवधान, यूस्टेकी नली, आकृति-भूमि पृथक्करण, निस्यंदक सिद्धांत, निस्यंदक क्षीणता सिद्धांत, गेस्टाल्ट, प्रकाश अनुकूलन, तीव्रता, एकनेत्री संकेत, कोर्टी अंग, प्रात्यक्षिक स्थैर्य, फ़ाई घटना, तारत्व, मूल रंग, दृष्टिपटल, रोडोप्सिन, दंड, चयनात्मक अवधान, अवधान विस्तृति, संधृत अवधान, ध्वनिगुण, अधोगामी प्रकमण, चाक्षुष भ्रम, तरंगदैर्ध्य

© NCERT not to be republished

सारांश

- *हमारे बाह्य एवं आंतरिक जगत का ज्ञान ज्ञानेंद्रियों की सहायता से संभव होता है। इनमें से पाँच बाह्य ज्ञानेंद्रियाँ तथा दो आंतरिक ज्ञानेंद्रियाँ होती हैं। ज्ञानेंद्रियाँ विभिन्न उद्दीपकों को प्राप्त करती हैं तथा उन्हें तंत्रिका आवेगों के रूप में मस्तिष्क के विशिष्ट क्षेत्रों को व्याख्या के लिए भेज देती हैं।*
- *दृष्टि एवं श्रवण दो सर्वाधिक उपयोग में आने वाली संवेदनाएँ हैं। दंड एवं शंकु दृष्टि के ग्राही होते हैं। दंड प्रकाश की निम्न तीव्रता में क्रियाशील होते हैं जबकि शंकु प्रकाश की उच्च तीव्रता में कार्य करते हैं। वे क्रमशः अवर्णक एवं वर्ण दृष्टि के लिए उत्तरदायी होते हैं।*
- *प्रकाश अनुकूलन एवं तम-व्यनुकूलन चाक्षुष व्यवस्था के दो रोचक गोचर हैं। वर्ण, संतृप्ति एवं द्युति रंग की मूल विमाएँ हैं।*
- *श्रवण संवेदना के लिए ध्वनि उद्दीपक होती है। तीव्रता, तारत्व तथा स्वर विशेषता ध्वनि की विशेषताएँ होती हैं। आधार झिल्ली में पाया जाने वाला कोर्ती अंग श्रवण का मुख्य अंग होता है।*
- *अवधान वह प्रक्रिया होती है जिसके द्वारा हम एक निश्चित समय में निरर्थक सूचनाओं का निस्यंदन कर कुछ अन्य सूचनाओं का चयन करते हैं। सक्रियता, एकाग्रता तथा खोज अवधान के महत्वपूर्ण गुण होते हैं।*
- *चयनात्मक तथा संधृत अवधान, अवधान के दो प्रमुख प्रकार होते हैं। विभक्त अवधान उन अभ्यस्त कृत्यों में स्पष्ट होता है जहाँ सूचनाओं के प्रक्रमण में एक तरह की स्वचालिता आ जाती है।*
- *अवधान विस्तृति, जादुई संख्या सात से दो अधिक अथवा दो कम होती है।*
- *प्रत्यक्षण का संबंध ज्ञानेंद्रियों से प्राप्त सूचनाओं की सुविज्ञ रचना एवं व्याख्या की प्रक्रियाओं से होता है। मानव अपनी अभिप्रेरणा, प्रत्याशा, संज्ञानात्मक शैली तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर अपने संसार का प्रत्यक्षण करते हैं।*
- *आकार प्रत्यक्षण का संबंध दृश्य परिरेखा के क्षेत्र से हटकर जो चाक्षुष क्षेत्र होता है, उसी के प्रत्यक्षण से होता है। अति आदिम संगठन आकृति-भूमि पृथक्करण के रूप में घटित होता है।*
- *गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने अनेक सिद्धांत बताए हैं, जो हमारे प्रात्यक्षिक संगठन को निर्धारित करते हैं।*
- *दृष्टिपटल पर वस्तु की प्रक्षेपित प्रतिमा द्विविम होती है। त्रिविम प्रत्यक्षण एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया होती है जो कुछ एकनेत्री एवं द्विनेत्री संकेतों के सही उपयोग पर निर्भर करती है।*
- *प्रकाश की किसी भी तीव्रता एवं किसी भी दिशा से किसी वस्तु का प्रत्यक्षण यदि अपरिवर्तनीय हो तो उसे प्रात्यक्षिक स्थैर्य कहते हैं। आकार, आकृति एवं द्युति स्थैर्य इसके उदाहरण हैं।*
- *भ्रम यथार्थ प्रत्यक्षण के उदाहरण नहीं हैं। हमारी ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं की गलत व्याख्या से यह गलत प्रत्यक्षण होता है। कुछ भ्रम सार्वभौम होते हैं जबकि अन्य वैयक्तिक एवं संस्कृति-विशिष्ट होते हैं।*
- *सामाजिक-सांस्कृतिक कारक हमारे प्रत्यक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। वे लोगों में प्रात्यक्षिक अनुमान की कुछ आदतों एवं उद्दीपकों की प्रमुखता के प्रति विभेदक अंतरंगता उत्पन्न कर कार्य करते हैं।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. ज्ञानेंद्रियों की प्रकार्यात्मक सीमाओं की व्याख्या कीजिए।
2. प्रकाश अनुकूलन एवं तम-व्यनुकूलन का क्या अर्थ है? वे कैसे घटित होते हैं?
3. रंग दृष्टि क्या है तथा रंगों की विमाएँ क्या हैं?
4. श्रवण संवेदना कैसे घटित होती है?
5. अवधान को परिभाषित कीजिए। इसके गुणों की व्याख्या कीजिए।
6. चयनात्मक अवधान के निर्धारकों का वर्णन कीजिए। चयनात्मक अवधान संधृत अवधान से किस प्रकार भिन्न होता है?
7. चाक्षुष क्षेत्र के प्रत्यक्षण के संबंध में गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों की प्रमुख प्रतिज्ञप्ति क्या है?
8. स्थान प्रत्यक्षण कैसे घटित होता है?

© NCERT not to be republished

9. गहनता प्रत्यक्षण के एकनेत्री संकेत क्या हैं? गहनता प्रत्यक्षण में द्विनेत्री संकेतों की भूमिका की व्याख्या कीजिए।
10. भ्रम क्यों उत्पन्न होते हैं?
11. सामाजिक-सांस्कृतिक कारक हमारे प्रत्यक्षण को किस प्रकार प्रभावित करते हैं?

परियोजना विचार

1. पत्रिकाओं से दस विज्ञापनों का संग्रह कीजिए। प्रत्येक विज्ञापन के विषय एवं संदेश का विश्लेषण कीजिए। किसी विशेष उत्पाद के संवर्धन के लिए विभिन्न अवधानिक एवं प्रात्यक्षिक कारकों के उपयोग पर टिप्पणी कीजिए।
2. एक घोड़े अथवा हाथी के खिलौने का प्रतिरूप दोषपूर्ण दृष्टि वाले तथा दृष्टियुक्त बच्चों को दीजिए। कुछ समय तक दोषपूर्ण दृष्टि वाले बच्चों को इन खिलौनों को स्पर्श करके इनका अनुभव करने दीजिए। बच्चों से कहिए कि वे इनका वर्णन करें। खिलौने का वही प्रतिरूप दृष्टियुक्त बच्चों को दीजिए। उनके विवरणों की तुलना कीजिए एवं समानताओं तथा असमानताओं का पता लगाइए।

   एक और खिलौने का प्रतिरूप लीजिए (जैसे- तोता) एवं कुछ दोषपूर्ण दृष्टि वाले बच्चों को स्पर्श करके इसका अनुभव करने दीजिए। उसके बाद उन्हें कागज़ का एक पन्ना एवं पेन्सिल दीजिए तथा उनसे कहिए कि वे पन्ने पर तोते का चित्र बनाएँ। वही तोता दृष्टियुक्त बच्चों को कुछ समय तक दिखाइए, अब वह तोता उनके सामने से हटा लीजिए और उनसे कहिए कि कागज़ के एक पन्ने पर तोते का चित्र बनाएँ।

   दोषपूर्ण दृष्टि वाले एवं दृष्टियुक्त बच्चों के द्वारा बनाए गए चित्रों की तुलना कीजिए एवं उनमें समानताओं एवं असमानताओं की जाँच कीजिए।

© NCERT not to be republished